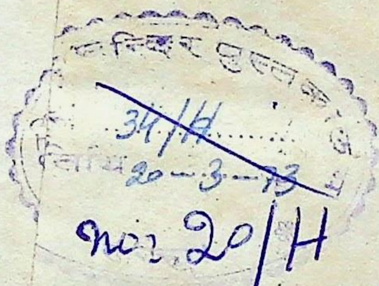
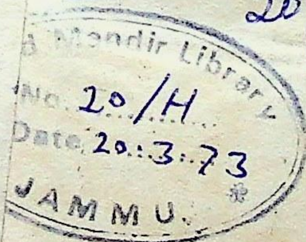

34/H
20-3-73
no. 20/H
20/3/73


a Mandir Library
No. 20/H
Date 20.3.73
JAMMU.

* ओं श्रीः *

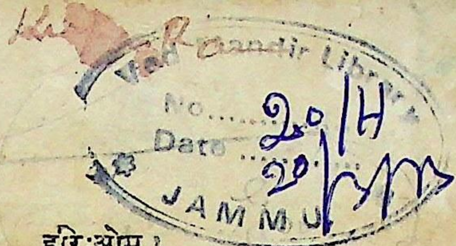
लीला-विज्ञानविनोद
नाटक.

जिसको
विद्यादिवाकर भारतभूषण
महामहोपाध्याय
श्री १०८ पं० केशवानन्द-
स्वामि जीने
मुमुक्षुजनों के उपकारार्थ
निर्माण किया.

और

सेवक मुखी प्रीतमदास
हैदराबाद सिंधने
"लक्ष्मीनारायण" यन्त्रालय में
छपाकर प्रकाशित किया.
प्रथमवार, सम्वत् १९६९

Printed by Lakshmi Narayan
at the Lakshmi Narayan Press,
MORADABAD.



हरि:ओम् ।

अथ-

लीला-विज्ञानविनोद-नाटक

प्रथम अङ्क

(स्थान रङ्गभूमी)

नान्दी-पाठ-

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैःस्तवैः
वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ॥
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यंयोगिनो-
यस्यान्तन्न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥

राग भैरवी ।

शिवोहं शिवोहं कर मन मेरे ।
दुःख दरद नहिं आवत नेरें ॥ टेक ॥
जो तुम जनम मरण ते डरहो ।
सन्त जनाकी शरणी परहो ॥
पापपुंज कटि जावैं तेरे ॥ शिवोहं०
सतसंगति में सिखो वैरागा ।

जाके लाभ होवैं बड़भागा ॥
काम कल्पना तुम्हह न घेरे ॥शिवोहं०
नित्यानित्य को करहो विवेका ।
मिथ्या जगत सत्य शिव एका ॥
मोह फांस गल पर है न तेरे ॥शिवोहं०
इन्द्रियगण को वश कर राखो ।
मिथ्या वाणी को मत भाखो ॥
दया दान पुण्य करिहो घनेरे ॥शिवोहं०
चंचलता को मन तुम त्यागो ।
दुर्जनसंगत ते सद् भागो ॥
शान्ती के घर लावो डेरे ॥शिवोहं०
वेद गुरूमें कर विश्वासा ।
नास्तिकता को करो निरासा ॥
श्रद्धा जननी के हो चेरे ॥शिवोहं०
वाद विवाद ते सद ही भागो ।
समाधान में कर अनुरागो ॥
प्रेत विक्षेप न आवत नेरे ॥शिवोहं०
शीत उष्ण ते जरा न डरहो ।

जैसी आवे तैसी जरहो ॥
यह सब धर्म अनातम केरे ॥ शिवोहं०
अनेक जन्म बीते जग माहीं ।
भवबन्धन ते छुटकत नाहीं ॥
मुक्ति की वांछा सुख कर तेरे ॥ शिवोहं०
शुद्ध सच्चिदानन्द अनूपा ।
ऐसो आतमदेव स्वरूपा ॥
तूं क्यूं दुखमय तनको हेरे ॥ शिवोहं०
देह विनासी हरि अविनासी ।
ताको अविद्या की नहिं फांसी ॥
जनम मरन के नाहीं बखेरे ॥ शिवोहं०
कहे हैं केशवानन्द स्वामी ।
प्रभु नारायन अन्तरजामी ॥
ताको भज मन सांझ सबेरे ॥ शिवोहं०

(सूत्रधारका प्रवेश)

सूत्रधार-अजी बस देवताजी बस, शान्ति करो, अतिकाल होता है, क्या आज ही अठारह पुराण समाप्त कर लोगे ।

(सभाकी ओर देखकर) ओहो! आज तो बड़ा ही हर्ष और उत्साहका समय है कि-ऋषि—महर्षि, संन्यासी-अवधूत महात्मा और अनेकानेक सम्प्रदायों के आचार्य मान्य पुरुष तथा सद्गृहस्थ पधार कर इस क्षुद्रजीवके मंडपको शोभायमान कर रहे हैं। (मनही मनमें) अब हमको यह विचारणीय है कि आज इन महानुभावों के मनोरंजनार्थ कौनसा नाटक कर्तव्य है। क्याकहैं आज प्राणप्यारी नटीने भी बहुत विलम्ब किया, न मालूम क्या कारण है। अच्छा अब मैं बुलाकर ही सम्मति लेता हूँ॥ (गाता है)

राग आसा।

प्रात भई हुण जागनी।
प्यारी होइआ सवेरा॥
गुरु चरणी उठ लागनी।
तैनूँ नींद ने घेरा॥ टेक॥
आधी राती सपने द्वार्थी।

जंगल शेरां बिचजा फाथी ।।
काले दीखें नागनी ।।तैनूँ नींदने०
फिर सुपने बण बैठी राणी।
भोग रोग कर पच्छोताणीं।।
नाकर झूँठा रागनी ।।तैनूँ नींदने०।।
जाग सबेला पंथ दुहेला।
सतगुरु सूरजसे कर मेला ।।
जावे अन्धेरा भागनी ।।तैनूँ नींदने०।।
उठ चल न्हाये अमृतबेला।
बिखड़ा मार्ग जाणा अकेला।।
सिर पर बोले कागनी ।।तैनूँ नींदने०।।
जो इस बेले जागण नारी।
सो रह सदा सुहागणप्यारी।।
आलस नूँ हुण त्यागनी ।।तैनूँ नींदने०।।
पीआ जिनांदा जागे प्यारी।
ओन्हापर क्यों चढ़ी खुमारी।।
लागे कुल कूँ दागनी ।।तैनूँ नींदने०।।
तीन पहर सोइ रातबिहाणी।

हूणाबी नजागेबहुतअयाणी॥
छोड़ नींद का रागनी ॥तैनूँ नींदने०॥
ऋषी मुनी तेरे गृह आये।
स्वांस रतन तैं खोय गमाये॥
दर्शन कर उठ जागनी ॥तैनूँ नींदने०॥
केशवानन्द जो जागे सवेला।
जमकिंकरसे होय न मेला॥
जाणो सो बड़भागनी ॥ तैनूँ नींदने०॥

(नटीका प्रवेश)

नटी-(गाती हुई)

राग रामकली।

सइओनी मैं प्रीतम पिआको मनाऊंगी।
इक पल भी न प्रभुको रुसाऊँगी॥ टेक॥
नैन सैनका करूँगी बिछोना।
प्रेमकी कलियां बिछाऊंगी ॥सइओनी०॥
तन मन धनकी भेट धरूँगी।
आपन आप मिटाऊंगी ॥सइओनी०॥
बिन पिया माने दुःख विहाने।
बहु जूनी भरमाऊँगी ॥सइओनी०॥

भेद खेदको दूर छोड़कर।
आतमभाव रिझाऊंगी ॥सइओनी०॥
जेकर पिया नहीं माने मोरा।
मैं आप गले लगजाऊँगी ॥सइओनी०॥
पिआ गल लागी मैं बड़भागी।
जनम मरण छुट जाऊँगी ॥सइओनी०॥
पिआ गललागे सब दुखभागे।
मैं पिया सुख लै होजाऊँगी ॥सइओनी०॥
केशवानन्दा मगन अनन्दा।
मैं आप पिआ होजाऊँगी ॥सइओनी०॥

(हाथ जोड़कर शिर झुका)

प्राणनाथके चरणकमलोंमें प्रणाम करती हूँ।

सूत्रधार-(प्रसन्न होकर) ओहो! प्राण-प्यारी! आप तो स्मरण करते ही आगई। आपकी बड़ी आयु है, यह अधिक प्रसन्नताका विषय है। (एक हाथ से नटीका हाथ पकड़ दूसरे हाथसे सभाकी ओर संकेतकर) हे प्रिये! प्रथम आप इन सज्जन पुरुषोंके दर्शनों द्वारा नेत्रोंकी सफलता-

पूर्वक अपने भाग्यको धन्यवाद दो।

नटी-प्राणाधार ! इन महानुभावों के दर्शन ही नेत्रोंको आह्लाद करते हुए भाग्यका धन्यवादरूप हैं।

विद्याविनयोपेतो हरति न चेतांसि कस्य मनुजस्य।
कांचनमणिसंयोगो नो जनयति कस्य लोचनाह्लादम्॥

विद्या और नम्रता करके युक्त जो पुरुष है सो किस पुरुष के चित्त को नहीं हरता। जैसे सुवर्ण और मणि का संयोग किस पुरुष के नेत्रोंको आह्लाद उत्पन्न नहीं करता। तिसपर भी यह सर्वसन्त विद्या, नम्रता के सिवाय तप योग और धारणा की निधि हैं-धन्य है !

सूत्रधार-प्राणप्यारी ! मेरी तो इतनी आयु हुई है परन्तु ऐसा समागम आज-तक कभी नहीं हुआ। मैं सोचता हुआ स्मरण कररहा था कि आज इस सन्तसभा के योग्य कौनसा नाटक होगा सो इतने

ही में आपका शुभागमन हुआ अब विचार करो।

नटी-(किञ्चित् विचारकर) प्राणाधार! स्त्री चाहें जैसी भी बुद्धिमती हो परंतु पुरुषसम विज्ञ नहीं होसकती। आपसे अधिक तो मेरी समझ है नहीं, परन्तु मेरे विचार से तौ श्रीमद् विद्यादिवाकर भारतभूषण महामहोपाध्याय श्री१०८श्रीस्वामी केशवानन्दजी का उपदेश किया हुआ 'लीला-विज्ञान-विनोद' नाटक अति उत्तम होगा।

सूत्रधार-प्रिये! मैंने तो अबतक श्रवण ही नहीं किया कि-ऐसे दिग्विजयी विद्वान् ने भाषा में कोई नाटक उपदेश किया हो। हां संस्कृत के तो निराकारमीमांसा भाष्य आदि अनेक ग्रन्थ विद्वद्‌मंडली में प्रसिद्ध हैं, भला ऐसे विद्वान् भाषा उपदेश करनेमें क्योंकर उत्साह करेंगे।

नटी--क्या यह बात आश्चर्यजनक है।

भाषाको आपने क्या समझा। भाषा सरस्वती का नाम है सो विद्वानों का इष्ट ही है। यदि ऐसे २ विद्वान् ही भाषा का सन्मान न करेंगे तौ साधारण पुरुष किस प्रकार प्रवृत्त होंगे--भाषा सर्वसाधारण को माननीय है यह आपने क्या कही।

सूत्रधार--(प्रसन्न होकर) अच्छा प्राण-प्यारी वही करो, मेरा भी उसके देखने का उत्साहरूप समुद्र बढ़ा है।

(दोनोंका प्रस्थान)

द्वितीय अङ्क

(स्थान महाराज विज्ञानदेवका मंदिर शयनागार)

(नामरूप मनोरंजिनी शय्यापर विज्ञानदेव शयन कररहे हैं)

विज्ञान--(स्वप्न से सचेत हो) हाय मेरी प्राणप्यारी--मृगनयनी--सुन्दरी! मेरा मन हरण कर कहां गई। (मनही मन) मैंने तो स्वप्न में किसी स्त्रीको देखा है, अब जाग्रत् में है नहीं, भ्रान्तिमात्र ही थी। फिर मैं उस के वियोग का शोक क्यों करूं, परन्तु मेरे

जाने इस नवयुवती बाला के हाररूप बन्धन में कैसे बँधजाऊँ (प्रकट) इस हार को क्या पहराती हो। प्यारी अपने गुणोंका हार मेरे हृदय में पहिराओ क्योंकि मैं विद्यारूपी हार का धारण करने वाला हूँ, लौकिक हारों से मेरी शोभा नहीं।

श्लोक--केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला,
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृता मूर्द्धजाः।
वाण्येका समलंकरोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते,
क्षीयन्ते खलुभूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ॥

बाजूबन्द आदि भूषण, चन्द्रमाके समान उज्वलहार, स्नान, चंदन, लेपन और सुन्दर सुगंधीवाले पुष्प इतर आदि से सुगंधित शिर के केश पुरुषको सुशोभित नहीं करते किंतु वेद-शास्त्रमय जो संस्कृत वाणीहै सोई अक्षय भूषण है, यदि हम विद्यारूपी अलौकिक भूषण को धारण किये हुये हैं तो इस लौकिक भूषण से हमारी क्या शोभा हो सकती है। हां अपने गुणों का हार

मेरे हृदयमें पहिराओ जिससे हमारा प्रेम आप में हो।

लीला-जो पदार्थ न बन सके उसके बनानेमें कुशल "अघटितघटनापटीयसी" माया मेरा नाम है और मेरे चरित्र न जानने वाले को मैं भुलाकर मोहजालमें डालती हूँ उसका नाम बद्ध है। और मेरे चरित्रको जाननेवाले के मैं सन्मुख भी नहीं खड़ी होती-सोई मुक्त है। इसीप्रकारकी अनेकानेक लीला करनेसे मेरा नाम लीलाभी है।

विज्ञान--आपका माता पिता कौन है ?

लीला--(हंसकर) भगवन् ! आप सर्वज्ञ सामर्थ्यवान् होकर भी विनोद के निमित्त ऐसे २ प्रश्न करते हैं। मैं जन्म से रहित हूं, इसी से मेरा नाम अजा है। सर्व संसार मेरे ही से उत्पन्न हुआ है इससे मेरेको प्रकृति अनादि शक्तिभी कहते हैं।

विज्ञान--प्राणप्रिये ! मैं आपही के विरह में विकल हुआ २ भ्रमण करता हूँ।

चित्तको धैर्य नहीं होता, इससे ज्ञात होता है कि वह सुन्दरी सत्यही थी और उत्साह भी कम नहीं है--इससे प्राप्त होनेकी आशा है (अकुलाकर शय्यासे उठ टहलते२ उपवनकी ओर जाते हैं और अपनी स्वप्नदृष्ट प्राणप्यारीको वृक्षों की ओट से निकलते हुए देखकर मन ही मन) अरे! यह मन्दराचलकी ओट से द्वितीय सूर्यनारायण कैसे उदय होरहा है। जितनी वार्ता देखता हूं सब विलक्षण ही होती हैं, न जाने क्या भेद है। अच्छा चलकर देखूं पश्चिम दिशा में है। (देवीके समीप जा) सुन्दरी ! तुम कौन हो, क्या तुम्हारा नाम और क्या जाति है और कहां के निवासी हो, तुम्हारा पति कौन है और अकेली क्यों विचरती हो ?

लीला--हे देव! मेरा नाम लीलादेवी है। ब्रह्मनगरमें निवास और अनिर्वचनीय मेरी जाति है, किसी योग्य पति के साथ

मेरा विवाह होगा। और उसी की खोज में अकेली बिचरती है।

विज्ञान-सुन्दरी! कैसी योग्यता होनेपर-तुम्हारा पति होसकता है।

लीला-हे देव! जरा, मरण, मान, अपमान हर्ष, शोक, क्षुधा पिपासादि रोग जिस में न हों और मलमूत्र से रहित शुद्ध देह-वाले योग्यपति को मैं बरूंगी।

विज्ञान-देवी! ऐसे गुणी तो विज्ञान देव ही हैं।

लीला-हे देव! मैं उन्हीं को तो खोज रही हूं।

विज्ञान-जो आपकी दृष्टि के सन्मुख है सोई विज्ञान देव है। निजज्ञान से विज्ञान को पहचान लो।

लीला-(कर में जयमाल ले) हे देव! आज्ञा होय तो जयमाला आपके कंठ में पहनाऊं।

विज्ञान-(मन ही मन) भला मैं विना

लीला--(अचंभित हो मेरा विरह कैसा ?

विज्ञान-देवी ! मैंने आपको स्वप्न में देखा और उसी समय मेरा आप से विवाह हुआ, उत्थान होते ही आपको न पाकर विरहातुर हुआ।

लीला-प्राणाधार ! मैंने भी स्वप्न में आपके दर्शन किये और आपके साथ मेरा विवाह हुआ तबही से मैं भी श्रीमान् की खोज में विरहाकुल हुई २ वन उपवन मारी २ फिरती हूँ।

विज्ञान-(लीला का हाथ पकड़) प्यारी यदि सत्य स्नेह है तो क्यों न प्राप्त होती, आओ अब आश्रम को चलें और सत्यही विवाह करलें।

(परस्पर गले में हाथ डालकर जाते हैं और व्यग्र चित्त होने के कारण प्रथम अमीरी (प्रवृत्ति) को उत्पन्न करते हैं फिर स्वस्थाचित्त हो फकीरी (निवृत्ति) को उत्पन्न कर विज्ञान देव लीला देवी दोनों पुत्रियों सहित नटशाला में प्रवेश करते हैं)

लीला-भगवन् ! दोनों पुत्री ही हुईं.

पुत्र होने का मनोरथ पूर्ण न हुआ।

विज्ञान-नहीं २ अधीर होने का कुछ काम नहीं है,इस व्यवहार से जो निवृत्ति-रूप फ़क़ीरी हुई है सोई सर्वोपरि है। यही बड़े २ महानुभावों की सभा में सत्कार पाती हुई मातृ-पितृ-कुल के गौरव की फहराती हुई धवलध्वजा हो सर्वोत्कृष्ट शोभायमान होगी--और पुत्र से तो सिवाय व्यवहारबन्धन के और कुछभी लाभ नहीं होसकता। क्योंकि पुत्रवान् पुरुष ही धन-संग्रह के अर्थ नानाप्रकार के अनर्थ कदर्थ करते हैं तिसपर भी यदि पुत्र योग्य हुआ तो मोहबन्धनका हेतु है, और अयोग्य तो कुलकलंक है ही। इससे बहुत ही अच्छा हुआ कि पुत्र न हुआ, यह दोनों पुत्री भी अन्य किसी का धन हैं उनको सौंप हम परमानन्दरूप धाम में निवास करेंगे। हां-इनके निमित्त किसी

योग्य वरकी खोज करना आवश्यक है।

(एक रजोगुणी नवयुवक का प्रवेश)

नवयुवक-(हाथ जोड़) जयदेव।

विज्ञान-(मनही मनमें) देखो कहीं मेरा ही तो सत्यसंकल्प पूर्ण होता दीखता है! (प्रकट) प्रियवर ! चिरंजीव रहो, आप का क्या नाम कहां के निवासी हैं और यहां किस निमित्त आगमन हुवा?

युवक हे देव! मेरा नाम धन है मैं चिन्ता नगरी का शासन करता हूँ, और श्रीमान् के दर्शनों की अभिलाषा से सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।

विज्ञान-राजकुमार ! यदि आप शा· सनाधीश हैं तो कहिये आपमें क्या २ गुण हैं?

धनदेव-हे भगवन् ! जिसपर मेरी सुदृष्टि होती है, (जिसके घरमें निवास करताहूं) सो यदि विद्याहीन भी हो तो

विद्वानों में सत्कार पाता है "सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ति" कुरूप भी हो तो रूपवानों में पूज्य होता है, कुलहीन होनेपर भी कुलीनों का मान्य होता है, राजओं का राज्य, सेठोंकी साहूकारी इत्यादि सर्व व्यवहार मुद्दाष्टि से चलते हैं, व्यवहार के सिवाय परमार्थी यज्ञदानादि भी मेरेहीसे सिद्ध होते हैं, मेरे से विमुख (निर्धन) पुरुष सर्वप्रकार क्लेशभागी ही होते हैं, मैं केवल गुणी ही नहीं हूं किन्तु चोरी जूआ जारी आदि दुर्गुण व्यवहार भी मेरे ही से चलता है, अहंकार तो मेरा प्रत्यक्त ही है परन्तु मैं अपनी ओरसे कुछ नहीं करताहूं, जिस संकल्प से जो मेरे को सेवन करता है उसके उसी संकल्पकी वृद्धि करता हुआ फल देता हूं। यद्यपि आप सरीखे महानुभावों के सन्मुख निजगुण दोषको प्रकट करना उचित नहीं है तथापि आप की आज्ञानुसार कहा, क्षमाकांक्षी हूं।

विज्ञान-(लीला से) प्राणप्रिये! देखो हमारे आपके सत्यसंकल्प का फल कैसा प्रत्यक्ष हुआ है कि अमीरी बेटी के योग्य सुन्दरवर स्वतःही आय उपस्थित हुआ।

लीला-प्राणाधार! आपतो पूर्णकाम हैं। जो आपके स्वप्न के ही संकल्प पूर्ण होते हैं तौ जाग्रत्का संकल्प सिद्ध हो इसमें क्या आश्चर्य है। आपका विचार अतिश्रेष्ठ है विवाह में शीघ्रता करो।

विज्ञान-अतिउत्तम (धनकी ओर देख, अमीरी का हाथ पकड़) हे प्रियवर! व्यावहारिक सर्वगुणों की निधि मेरी परम प्यारी अमीरी बेटी आपकी वामांगिनी हो सर्व सुख देय।

धन-(अमीरी का पाणिग्रहण कर) एवमस्तु।

(प्रणाम कर अमीरी को साथ ले अपनी चिन्तानगरी को धन का प्रस्थान)

विज्ञान--प्रिये! दूसरी कन्या के योग्य

घर की और चिन्ता है।

लीला-(दुःखितसी) महाराज! अमीरी के वियोग से ही मेरा प्राण हरण कर रहा है।

विज्ञान-नहीं नहीं प्रिये! धैर्य धारण करो, अमीरी धनदेव योग्य पति के समीप है सुख से रहेगी। और फकीरी (निवृत्ति) ही सर्व सुख साधनरूप होने से हमारी परम प्यारी है।

(सात्विक युवक का प्रवेश)

युवक (हाथ जोड़कर) श्रीमान् के चरणों में प्रणाम है।

विज्ञान-प्रियवर! चिरंजीव रहो।

युवक-श्रीमान् के कृपाकटाक्ष से सर्व आनन्द है।

विज्ञान-आपका क्या नाम, कहां के निवासी हो, अपना स्वभाव प्रकृति सर्व वर्णन करो।

युवक--हे देव ! मेरा नाम मन है, मैं निश्चिन्ता (बेफ़िक्री) नगरी का राज्य पालन करता हूँ और मैं ही सर्व के सुख, दुःख का कारण हूँ-'मनएव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः' मैं मन ही मनुष्यों के बन्ध मोक्ष का कारण हूँ, जो पुरुष मुझ मन के स्वरूप को जानकर गुरुमुख हो मेरे साथ मित्रभाव से बर्त्ताव करता है उसको मैं मुक्ति का हेतु होता हूँ और जो मुझे न समझता हुआ मनमुखी चेष्टा करता है उसके बन्धन का हेतु होता हूँ। जब मेरे में सन्तोष गुण आता है तब राजा भी रंक दिखाई देता है और जब लोभ दुर्गुण आता है तब इन्द्र भी दीन होजाता हैः-

अन्तःशीतलतायान्तु लब्धायां शीतलं जगत् ।
अन्तस्तृष्णोपतप्तानां दावदाहमयं जगत् ॥ १ ॥

मन में शीतलता है जिसके उसको जगत् शीतलरूप है और जिसका मन तृष्णा करके तप्त है उसको अग्नि से दग्ध वन के

समान जगत् है। जाग्रत् स्वप्न अवस्थाभी मेंहिही है और जब मैं अविद्यारूपी शय्या पर शयन करता हूं तब सुषुप्ति अवस्था हो जाती है और जब मैं अपनेअभिन्न निमित्त-उपादान कारण ब्रह्म में लय होजाताहूं तब चतुर्थ अवस्थारूप समाधि होती है। फिर मैं ही पूर्व वासनारूप संस्कार से चंचल होकर समाधि को भी भङ्ग करदेता हूं। ऐसे गुण दोष तो सब में ही होते हैं, निर्दोष तो विज्ञानस्वरूप आपही हैं, आप के दर्शनका लाभ हमारा भाग्योदय है।

विज्ञान-(लीलासे) प्राणप्रिये! अतिहर्ष का विषय है कि दोनों पुत्रियों को यथा-योग्य वर मिले जैसे। अमीरी को धन तैसे ही फक़ीरी को मन परमसुखदायक है।

लीला-(हर्षित हो) प्राणनाथ! बहुत उत्तम है कि जो मन फक़ीरी को धारण करे, फक़ीरी से बहुत कष्ट नष्ट होता है।

विज्ञान-(मनको फक़ीरीदे) हे पुत्र मन! फक़ीरी आपको परम सुखदायी हो।

मन-(फ़क़ीरी को अंगीकार कर) एवमस्तु।

(लीलविज्ञान को प्रणाम कर, फकीरी को ले निश्चिन्ता नगरी को मनका पयान)

तृतीयअङ्क

(स्थान धन-अमीरीका कमरा)

(धनदेव अपने कमरेमें विराजमान हैं और अहंकार चोवदार द्वार पर खड़ा है)

धन-चोबदार! सुनो हम अमीर हैं, दर्शनी द्वार पर शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध-मैथुन सिपाहियों का दो दो घंटे का पहरा बोलदो और आज्ञादो कि कोई संत ब्राह्मण भूखा-नंगा, दीन-दुःखी, अंदर आ हमें न सतावे, और बग्घी, टमटम, चुरट, हाथी, घोड़े, पर सवार हो तो उसे न रोको, बेखट आकर हमसे मिलने दो।

अहंकार-जो आज्ञा महाराज की ।

(प्रबन्ध करता है)

(धनदेवके पिता धर्म्मवीर माता धैर्य अन्दर आना चाहते हैं

(और द्वारपाल रोकते हैं)

द्वारपाल-चिल्लाकर, अरे ! यह कौन कहां जाता है बाहर जाओ । तुम्हारे जैसे दीनों को अन्दर जाने की आज्ञा नहीं है-भागो यहां से ।

धर्म्म-(दीनता से) अरे भाई ! यह धन का स्थान है, मेरा नाम धर्म्म है, मैं धन का पिता हूँ और यह धैर्य उसकी माता है उनके देखे विना बहुत दिवस हुए हैं, जाकर हमारे आने का समाचार कहो ।

अहंकार-(धन से) महाराज ! एक बुड्ढा बुढिया दीनों की नाईं द्वारपर खड़े कहते हैं कि हमारा नाम धर्म और इस स्त्री का नाम धैर्य है, हम धन के पिता माता हैं उनको देखने के निमित्त आये हैं

धन-(मनहीमन) देखो इस बुड्ढे की

कैसी बुद्धि नष्ट है कि हमको लज्जित करने को आया है (प्रकट, चित्त बिगाड़ मुँह फेर) हमारा कोई माता पिता नहीं है, अमीरों के सैकड़ों सम्बन्धी बनते हैं, अरे तुम से पहले ही कहदिया था कि दीन दुःखियों का समाचार भी न सुनाया करो, हमारी तबीअत ख़राब होती है, बस जाओ यहां से।

अहंकार-जो आज्ञा महाराज की।

(धन धैर्य को धक्के देकर निकाल के लौट नैपथ्य में हर्षजनक कुतूहल सा श्रवण कर द्वारपर खड़ा होता है)

दासी-चोबदार ! राजकुमारका मंगलमय जन्म महाराज को निवेदन करो।

चोबदार-(प्रसन्न होता हुआ) बधाई है महाराज को। श्रीमती अमीरी रानी से राजकुमार का जन्म हुआ है।

धन—(फूलाअंग नहीं समाता) चोबदार ! लोभ मंत्री को बुलाओ।

अहंकार—जो आज्ञा महाराज की।

(नैपथ्यके द्वारपर खड़ा हो मन्त्री को पुकारता है)

(मंत्री का प्रवेश)

लोभमंत्री-(हाथ जोड़) जय जीव महाराज !

धन-मंत्री साहब ! आपने कुछ सुना है?

लोभ-श्रीमन् क्या वार्ता है, आज्ञा कीजिये।

चोबदार-(मंत्रीसे श्रीमान् के अमीरी रानी से राजकुमार का जन्म हुआ है, (कान में) कुछ हमारे भी गहरे कराना,आप मंत्री हैं।

लोभ-(मनहीमन) यह तो आज-खर्च बतावेंगे मेरेसे होगा नहीं, तुम यहां से चलो (प्रकट) श्रीमान् को बधाई है अतिहर्ष का अवसर आज प्राप्त हुआ है, अति आनन्द की वार्ता है।

धन-यह सब आपही का प्रताप है, जब से आप यहां पधारे हैं तब से हर प्रकार से उन्नति ही दीख पड़ती है। दीनदुःखियोंकी-कांय कांय से पीछा छूटा, कोष बढ़ा,चिर-

जीव कुंवर का जन्म हुआ है। अच्छा अब आप इस शुभ समाचार सुनाने वाले प्रिय चोबदार (अहंकार) को ५ पांच लक्ष अशर्फी पारितोषक दो।

लोभ-(मनहीमन) लो जो विचारी थी सोई हुई। अब तुम यहांसे सटको नहीं तो कुछ और सुनावेंगे (प्रकट) जो आज्ञा महाराज की।

(दफ्तर में जाता है)

चोबदार-(पीछे दबे पांव) मंत्री साहब श्रीमान् ने जो इनाम बतलाया है दीजिये।

लोभ-(मनही मन) आज यह भली आफत लगी वह तो खुशी के मारे पागल हो ख़ज़ाना लुटाये देते हैं। अगर लड़का कलही मरगया तो कैसी होगी (प्रकट) सुनों भाई पांच सो रुपया बताया है-कम से कम ढाईसो तो मेरे होंगे ही और जो तुम कहोगे सो देदूंगा, धन्यवाद देना तुम्हारे पहले ही गहरे करादिये।

चोबदार—बहुत अच्छा साहब जो आपकी इच्छा (मनही मन) बड़ा भारी पेटहै आपका कैसे भरेगा।

(जाता है)

धन—चोबदार! पंडित को बुलाकर नाम-करण कराओ।

चोबदार—जो आज्ञा महाराज की। (मनही मन) मेरा तो घर भरहीगया है पंडित जी की और कसर रही है (बुला कर लाताहै)।

पण्डित—महाराज की जय हो (पत्रा देखकर) महाराज इस बालक का नाम संसार (जगत्कुमार) है । बाल्यावस्था में खेल खेल,युवावस्था में भोग भोगेगा-और वृद्धावस्था में संतोंके संग से ज्ञानी ध्यानी हो परम सुख पावेगा। इसके ग्रह बहुत उत्तम पड़े हैं।

धन—चोबदार! भोजन करा दक्षिणा दे पंडितजी को बिदाकरो।

चोबदार—जो आज्ञा महाराज की, मंत्री साहब दक्षिणा देंगे तो पंडितजी के भी करम खुलगये।

धन-नहीं २ महलों में से वस्त्र द्रव्य दे पंडितजी को प्रसन्न कर विदा करो।

चोबदार-जो आज्ञा महाराज की (प्रसन्न कर विदा करता है)

धन-चोबदार! जगत्कुमार विद्या पढ़ने के योग्य हुए हैं कोई सुशिक्षित मास्टर लाओ-

चोबदार- जो आज्ञा महाराज की

(जगत्कुमार और मास्टर सहित चोवदार का प्रवेश)

धन-मास्टर साहब! जगत्कुमार को भले प्रकार पढ़ाइये आपको अच्छा वेतन देंगे—बेटा जगत्कुमार! मास्टर साहब से मन लगाकर पढ़ो—

जगत्कुमार-(लाड़से) बहुत अच्छा मास्टर के पास बैठता है।

मास्टर—भय्या जगतकुमार! आप

पढ़ने में मन नहीं लगाते यह बात ठीक नहीं है।

जगत् कु०-सुनोजी मास्टर साहब ! अगर हमारे पास धन है तो आप सरीखे सैकड़ों मास्टर द्वारपर आ रहेंगे क्या हमें नौकरी करनी है जो विद्या पढ़ें हमारे ताश-खेलने पतंग उड़ाने का समय है और आप अपनी ही तीन पांच लगाते हैं आज तक हमने आपका बहुत लिहाज़ किया।

(जगत्कुमार उठजाता है मास्टर साहब भी अपना सा मुँह लिये जाते हैं)

चोबदार-(सुस्त होकर) महाराज ! जगत्कुमारकी हालत देख २ कर अक़ल कुछ काम नहीं करती पढ़ना लिखना छोड़ नानाप्रकार के शस्त्र ले वनमें जा भोले भाले दीन जीवों का अकारण विनाश करते हैं-बहुत रोका मानते नहीं-अब कल ही की हालत सुनिये'काम क्रोध आदिक

कुमार्गियों के संग डोलते २ एक कुनारी क्वारी स्त्री को वर लाये हैं--महाराज उस नारी की दशा ऐसी है कि चातुर्मास के पीले मेंढकके समान रंग ग्लानिके योग्य है सो उसका नाम सुमुखी चंद्रकली रक्खा है, उसके घर लानेसे माता अमीरीने रोका तो उनको बहुत ताड़न किया। भला यह अमीरी देवीका फूलसा शरीर क्या हंटर से ताड़न करने योग्य है। स्त्रीका फूलमाला से पूजन और माता से इसप्रकार दिन रात क्लेश रखता है और प्रतिज्ञा करली है कि इसको तो मैं छोडूंगा नहीं, परन्तु तुम को दाने २ को मुहताज करदूंगा। द्रव्य वस्त्र सब ताले में बन्द करदिये हैं, माताको फटीहुई धोतीपहरे देख लज्जित नहीं होता गुरुका निरादर तो आपके सन्मुख होही-चुका है। इसप्रकार पूज्योंका अपमान कर कुलहीन दुर्दशा नारीका संग बड़े हर्षके साथ करते हैं और नाना प्रकारके दुरा-

चारोंमें प्रवृत्त हैं कहांतक कहूँ, एक समय प्रयागराजका कुम्भपर्व है और उसीसमय आगरेका दर्बार है। एक इष्टमित्रने आकर कहा कि-साहब प्रयागराजको आपभी पधारेंगे-तो उत्तर दिया कि-हमारे पिता धनदेवने बहुतसे कार्य हमारे ऊपर डाल दिये हैं जिनसे फुर्सत नहीं मिलती। हां राजदर्बारके वास्ते धनदेवके द्वारा कोशिश कररहे हैं-जो शामिल होसकें। प्रयागराजके मेलेमें धक्के खानेसे क्या फायदा है। अब देखिये, जगत्की समझ कहांतक बढ़ी हुई है कि-प्रयागराजके स्टेशनपर सैकड़ों पंडे ब्राह्मण, यात्रियोंके सत्कारार्थ उपस्थित रहते हैं और बड़े आदरपूर्वक लेजाकर यथायोग्य स्थानपर ठहराते हैं। त्रिवेणीका होता है स्नान, यथाशक्ति करो दान, भगवान् वेणीमाधवका धरो ध्यान, सन्तोंकी मंडलियोंमें होय पयान,

सत्संगसे प्रकटे ज्ञान; ऐसे लाभके वास्ते तो कुँवर साहबको फुर्सत ही नहीं। और राजदर्बारमें शामिल होनेकी यनद्वारा कोशिश करते हैं कि-जहां सैकड़ों अमीर डोलते हैं, कोई नहीं पूछता कि तुम कौन से बागके बथुआ हो? क्योंकि न्यायाधीश के दर्बारमें तो यथायोग्य सन्मान होता है और आज कल मामूली आदमी भी थोड़ासा धन पाकर अपनेको अमीर मान बैठते हैं और कीरोंकी समान चेष्टा कर धन अमीरीको भी लजाते हैं। महाराज! ऐसी बातोंके सिवाय नानाप्रकारके दुराचारोंसे ऐसे२ कुरोग पैदा किये हैं जो कहे नहीं जाते। परन्तु यह सब आप (धन) की सुदृष्टिसे ही हैं; निर्धन पुरुष ऐसे उपद्रव नहीं करसकता। न मालूम आपका क्या विचार है कि जगत्की ख्वारीसे अपनी निन्दा होने परभी उसको नहीं समझाते।

(क्रोधसे खड़ा होजाता है)

धन-(सिरधुन)हाय दुष्ट जगतकुमार ! धिक्कार, अरे नीच ! मुझ धनके निमित्त तौ तेरा माता २ कहते मुख सूखता था,

अरे स्वार्थी ! तूतौ कहता था कि माता ही इष्टदेव है। पैर धोता था, धोती धोता था, उच्छिष्ट खाता था, अरे चांडाल ! अब तेरी यह दशा ! अमीरीदेवी ! पुष्प-मूर्त्ति पुष्पवाणी-पुष्पशरीर क्या तेरे चाबु-कोंके लायक है, क्या तुझे इसी निमित्त सूकरसा पाला था। धिक्कार ! धिक्कार !! धिक्कार !!!

(गाता है)

रागदेश।

भजन बिन जीवन व्यर्थम जान।
जैसे सूकर स्वान ॥ टेक ॥
कर पाखंड धन वहुविधि संचिओ।
खोइयो धर्म इमान ॥ १ ॥ भजन०॥

लोभ लाग कुछ धर्म कमाइयो।
बहुता करत गुमान ॥ २ ॥ भजन० ॥
अहरण चोरी कर घर राखैं।
सूई करता दान ॥ ३ ॥ भजन० ॥
कोठे चढ़कर पंथ निहारैं।
कब आवै पुष्प विमान ॥ ४ ॥ भजन० ॥
भगतनको धन लूटन कारण।
नाम भगत भगवान ॥ ५ ॥ भजन० ॥
केशवानंद कपट बिन भक्ती।
माने कृपानिधान ॥ ६ ॥ भजन० ॥

(धन देवका चिन्ता निमग्न हो, विज्ञानदेवकी शरण जानेके निमित्त प्रस्थान)

चतुर्थाङ्क

(स्थान फ़क़ीरी मनका आश्रम)

(श्रीगंगाजी के तीर पर विवेकसहित मन विराजमान है)

मन-हे विवेक ! देखो, इस फ़क़ीरीदेवी के प्रतापसे हम लोग करामलकवत् परमानन्दका साक्षात्कार कररहे हैं। परमार्थ-

लाभ के सिवाय शारीरिक सुख भी पूर्ण है। जिस अमृतरूप गंगाजलकी देवता भी इच्छा करते हैं और अन्य देशोंके रहने वाले लोग एक २ बिन्दुको इन्द्रपदवीकी प्राप्तिसे भी अधिक समझकर धारण करते हैं सो वही गंगाजल हम लोगोंको स्नान पानादि सर्व व्यवहारके वास्ते सहजहीमें प्राप्त है। तिस गंगाजलके स्पर्शमात्रका प्रभाव सुनो-

कदाचिन्नागारिः सुरतटिनितीरं परिचरन्,
समादाय व्यालं सजलमगिलत्कञ्चनबलात्॥
चतुर्बाहुर्भूत्वा तदुपरि समारुह्य सहसा,
गतोवै वैकुण्ठं तव जननि तोयस्य महिमा॥ १ ॥

किसी कालमें गरुड़ श्रीगंगाजीके तीर-पर विचरता हुआ सर्पको मुखमें पकड़, गंगाजलमें भिजोकर निगलजाता हुआ। गंगाजलके स्पर्शसे सर्प चतुर्भुजस्वरूप विष्णु हो उसी गरुड़ पर आरूढ़ होके वैकुंठ को जाताभया, हे गंगे! तेरे जलकी ऐसी

महिमा है। हे विवेक ! यदि परइच्छासे सर्प को जलका स्पर्श हुआ तो वह विष्णुरूप होगया। हम तो इस महिमाको जानते हुए स्नान-पानादि करते हैं, हम यहांही विष्णु-रूप हैं परन्तु हम विष्णु होनेकी इच्छा नहीं करते, क्योंकि विष्णु होनेपर एक ग्लानि है कि-गंगा विष्णुपादोदरी कहाती है, किन्तु हां जटाशङ्करी होनेके कारण हम शङ्कर होनेको परम उत्साहित हैं और दूसरे हरसमय सन्तोंका संगभी इस फ़क़ीरी देवीके ही प्रतापसे है। सन्त-समागम अतिदुर्लभभाग्योदयसेमिलताहैः-

लघुर्जनः सज्जनसंगिसंगात्,
करोति दुस्साध्यमपि सुसाध्यम् ॥
पुष्पाश्रयात् शम्भुशिरोऽधिरूढा
पिपीलिका चुंबति चन्द्रविम्बम् ॥

जैसे पुष्पके आसरेसे शङ्करके शीशपर आरूढ हुई चींटी चन्द्रमाके मुखको चूसकर अमृत पीती है इसीप्रकार तुच्छबुद्धिवाला

पुरुष भी सन्तोंके संगसे दुस्साध्य मोक्षको सहजहीमें सिद्धकरलेता है। ऐसा सत्संग और बेफिकरी नगरीकी ठंडी छायामें निवास, यह सब फ़क़ीरी देवी का ही प्रभाव है।

विवेक (द्वारपरजा, लौटकर) श्रीःमन्! आपके दर्शनों को काम आया है और अपने को आपका मित्र कहता है।

मस्तमन-हे विवेक! हम फ़क़ीर हैं, हमारा मित्र कौन और कौन शत्रु है, यदि कोई आया है तो उसको प्रेमपूर्वक समझादो कि मित्रभावको त्याग, निष्काम होकर आओ, हम मिलेंगे।

(लाताहै)

(निष्काम का प्रवेश)

निष्काम-(प्रणाम कर) भगवन्! आप का वचन ऐसा प्रभावशाली है कि मैं एक वाक्यही से निष्काम होगया। धन्य है आपको।

मन (आदरपूर्वक आसन दे) मित्र ! निष्काम होने के अभिमान को भी छोड़ो क्योंकि मैं निष्काम हूँ, यह भी कामना ही है, किन्तु हां-

"नाहं कामो नमे कामः इति कामो विजीयते"

न मैं काम हूँ, न मेरे में कामना है, इस प्रकार कामना का जय होता है। इसकारण आप निष्काम अभिमान को भी त्याग कर सुरतटिनी के तीरपर जीवन्मुक्त हो विचरो, येही हमारी आपकी मित्रता का फल और आपको जन्मजीवनका लाभ है।

(प्रणाम कर जाता है)

विवेक-(फूला अंग नहीं समाता) श्रीमन् ! आज बड़ा हर्ष का सुअवसर आकर प्राप्त हुआ है कि, श्रीमती फ़क़ीरी (निवृत्ति) देवी से विचारदेवका आविर्भाव हुआ।

मन-(हर्ष विषाद रहित) हे विवेक !

क्या आजही हर्ष का समय आया है। जब से फ़क़ीरी देवी का शुभागमन हुआ तबही से हर्ष के बादल छारहे हैं, सुखके समुद्र उमड़ रहे हैं। हां यह अधिकतर हर्ष-जनक है कि विचारदेव प्रकट हुए हैं।

विवेक-(प्रसन्न होतेहुए) श्रीमन्! विचारदेव खेलने के योग्य हुए हैं आज्ञा हो तो आपके समीप लाऊँ।

मन-यथारुचि।

विवेक-जो आज्ञा महाराजकी।

(विचारकुमारको लाता है)

मन-(विचारको समीप बैठा) पुत्र! आपकी क्या रुचि है, कैसा खेल खेलोगे।

विचारकु०-(हाथ जोड़कर) पिताजी! ओंकार कैसे लिखा जाता है, अपने हाथ से लिख दिखाओ। (दिखाते हैं)

विवेक-भगवन्! अद्भुत बालकों के खेल भी अनुपम ही होते हैं :-"होनहार बिरवान के होत चीकने पात"।

विचारकु०--पिताजी ! अब मैं वेद पढ़ूँगा। सामवेद के स्वर मुझे बहुत ही प्रिय लगते हैं। प्रथम सामवेद ही पढ़ूँगा।

मन-हां पुत्र ! पहिले सामवेद ही पढ़ावेंगे परन्तु उपनयनसंस्कार के पश्चात् वेदारम्भ होता है, इसकारण प्रथम अष्टाध्यायी कंठ करो। विवेक ! कुँवरको मुनिमंडल महाविद्यालय में लेजाकर शास्त्रीजी का पूजन भेंट करा, विद्यारम्भ करा आओ।

विवेक-जो आज्ञा महाराजकी।

(दोनों जाते हैं)

(अष्टाध्यायीकी पुस्तक कांखमें दबाये हुए विचारकुंवरका प्रवेश)

विचार-(प्रणामकर, समीप बैठ) पिताजी ! हमने अष्टाध्यायी कंठ करली है, सुन लीजिये। और शीघ्र संस्कार करा वेदारम्भ कराइये, हमको वेदाध्ययन की परम उत्कंठा है।

मन—विवेक ! शीघ्र संस्कार करा वेदारम्भ कराओ ।

विवेक-जो आज्ञा महाराजकी ।

(संस्कार हो वेदारम्भ होता है)

मन-विवेक ! विचारकुमार अध्ययनमें मन लगाते हैं या नहीं ?

विवेक-श्रीमन् ! विचारकुमारकी अद्भुत मेधा (धारणाशक्ति) है । देखिये, स्वल्पही कालमें चारों वेद, छःहों शास्त्र, आठों व्याकरण, छन्दोग्रन्थ इत्यादि सब पठन कर विद्यानिधि होगये हैं । परन्तु एक बड़े सन्देहकी बात है कि जबसे आपने वेदान्तका पठन किया है तबसे गङ्गातीर शिलापर पड़े रहने के सिवाय खान-पान, घर-द्वारकी सुधि ही नहीं करते । हम लोग बलात्कार उठालाते हैं तो खाते पीते हैं, नहीं तो कुछ चिन्ता नहीं ।

मस्ताना मन-(मन ही मन हर्षित हो)

ऐसा तो होना ही चाहिये था। (प्रकट) विवेक ! उनको मेरे पास ले आओ।

विवेक-जो आज्ञा महाराजकी।

(लाता है)

विचार-(प्रणाम कर, समीप बैठ) श्रीमान् क्या आज्ञा है ?

मन-(विचारके सिरपर हाथफेर) पुत्र आप गंगातट पड़े रहते हैं, घर क्यों नहीं आते। तुम्हारी माता स्मरण करती रहती है।

विचार-माता, पिता, पुत्र, पुत्री, यह सब व्यवहार बन्धनरूप दुःखका ही हेतु है। शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप निर्बन्धन अपना आत्मा ही सर्वसुखमूल है इसकारण आत्मनिष्ठाके सिवाय शरीररक्षामें भी मेरी रुचि नहीं होती।

मन (फूले अंग नहीं समाते हैं) सुनो पुत्र, जब तुम्हारी ऐसी धारणा है तौ तुम्हारा अहोभाग्य है, तुमने हमारा कुल

पवित्र करदिया, जिस कुलमें एक पुरुष ब्रह्मनिष्ठ होता है सो कुल पवित्र है। (सात पीढ़ी आगेकी, सात पीढ़ी पीछेकी १४ पीढ़ीका कुल होता है) मैं तुमसे परम प्रसन्न हूँ। परन्तु तुम अभी बालक हो, क्रोधादि दुष्टजन्तु जंगलमें डोलते हैं, तुम्हारी माताको बहुत चिन्ता रहती है, रात्रिको उसके समीप आजाया करो। बालक विचारकी रक्षा निवृत्ति मातासे ही भलीभांति होसकती है। और एक दृष्टान्त मैं सुनाता हूँ सुनो, एक नगरथा उसके समीप एक बड़ी नदी बहरही थी और नदीके उसपार एक भयानक बनथा, जिसमें सिंह-व्याघ्रादि अकंटक राज्य करते थे। उस नगरकी ऐसी शासन प्रणाली थी कि किसी योग्य पुरुषको राजा बनाकर एक वर्ष राज्य करा, पश्चात् उस भयानक नदीके पार उतार देतेथे। दैवयोगसे एकवार संतोंका सत्संगी जाफँसा, उसने राज्य-

सिंहासनपर बैठते ही उन्हीं मंत्रियोंको आज्ञा दी कि-इस नदीका पुल बांधकर, सिंहादिकोंको मार, वनको काटकर राज्य-भवन बनाओ। वर्षभरमें जब ऐसाही हो-गया तब वह राज्यसिंहासनसे स्वयं उतर मंत्रियोंसे कहने लगा कि-अब आप राज्य का प्रबन्ध करो और मेरेको नदीके पार उतार दो। मंत्रियोंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि-श्रीमहाराज जब आपने इसीप्रकार की सी रचना उस पारभी करली है तो चाहें उधर रहो चाहें इधर, दोनों ओर आपही का राज्य है। हे विचारपुत्र! जब तुमने आशारूपी नदीका सन्तोषरूप पुल बांध, काम-क्रोधादि सिंहोंको मार विषयरूपी वनको काटकर, ज्ञानरूप धवल

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला,
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी ॥
मोहावर्तसुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी,
तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः॥

बनालिये हैं तो चाहें आश्रममें रहो चाहें बनमें, तुम्हारे दोनों हाथों में लड्डू हैं। और अब हम सुनारी आरामदारी (निर्विक्षेपस्थिति) के साथ तुम्हारा विवाह करे देते हैं जहां रहोगे वहीं तुमको प्रवृत्ति निवृत्ति का भान ही न होगा, परन्तु अपनी माता फ़क़ीरी के सत्यस्नेह को भंग न करो।
(पुत्र विचार के आगमन को सुन माता फ़क़ीरी का प्रवेश)

फ़क़ीरी—(स्नेह से) पुत्र तुम कहां रहते हो ? घर क्यों नहीं आते !

विचार-(गाते हुए)

राग रामकली।

माई मेरी चारों खूंट जगीर,
मोसम कौन अमीर ॥ टेक ॥
पर्णकुटी इक महल हमारा,
सोहै गंगा तीर ॥ माई मेरी० ॥
बहुविधि चीर गोदड़ी पहिरे,
देखो मखमल चीर ॥ माई मेरी० ॥
दोनों कर करलीन कटोरा,

पीवें गंगानीर ॥ माई० ॥
जीर्ण लँगोटा कमर हमारे,
झलक स्वर्ण जंजीर ॥ माई० ॥
जहँ घर जावें भोग लगावें,
खावें माखन खीर ॥ माई० ॥
जे कर पृथ्वी डगमग डोले,
तौभि न त्यागें धीर ॥ माई० ॥
दुनियांकी खटपट सब छोड़ी,
सदा भजें रघुवीर ॥ माई० ॥
केशव पीर बने सब जगके,
कहते लोग फ़क़ीर ॥ माई० ॥

फ़क़ीरी (स्नेहसे हाथ पकड़कर) पुत्र! घरको तो चलो।

(सबका प्रस्थान)

पञ्चमाङ्क

द्वितीय गर्भाङ्क

(स्थान महाराजा विज्ञानदेवकी सभा)

(लीलादेवीसहित विज्ञानदेव विराजमान हैं, सत्संग द्वारपाल खड़ा है)

लीला-प्राणाधार! बहुत दिवस बीतगये, दोनों पुत्रियोंमेंसे किसीकी भी आजतक सुधि नहीं मिली चित्त चिन्तातुर रहता है।

विज्ञान-नहीं २ पुत्रियोंकी चिन्ता करना निष्फल है। जिसका धन उसके पास, उसमें अपना क्या ममत्व है। यदि आपकी ऐसीही रुचि है तो स्वतः ही समाचार मिलजायगा।

(धनका प्रवेश)

धनदेव-(विह्वल हो दोनोंके चरणों में प्रणामकर) जयदेव महाराज!

लीला-(फूली अंग नहीं समाती) पुत्र! चिरंजीव रहो। कहो मेरी प्राणप्यारी अमीरी बेटी प्रसन्न तो है?

धन-(हाथ जोड़) श्रीमतीकी कृपासे सर्व कुशल है।

विज्ञान-(आसन दे) कहोभाई आप सुस्त क्यों हैं, बड़े दुर्बलसे होरहे हो कुशल तो है ?

धन-(उदासहो) क्या कहूँ महाराज कुछ कहा नहीं जाता। विपत्तिके दिन मैं भी फांड़ रहा हूँ, जिस दिनसे मेरा विवाह हुवा है पहिले तो खूबही आनन्द मंगल रहा, फिर न मालूम किस अपराधसे संसार (राजस-तामस-वृत्ति वाले जीवोंका समूह) बेटा उत्पन्न हुआ। पहिले तो एक साथही खुशी हुई फिर उसके आचरण देख २ हृदय विदीर्ण होने लगा; क्योंकि सनातन मर्य्यादाको छोड़, दुराचारी पुरुषोंके संगसे दुराचरणमें प्रवृत्त हुआ और कुलहीन रुवारीनामा कुनारीसे स्वच्छन्द विवाह करलिया है। उसकी

माता अमीरी विचारीकी तो क्या चलाई मेरेभी नाकमें दम बंद हैं। इसीकारण श्रीमान्‌को खबर नहीं दी कि-हम तो कर्मोंका फल भोग ही रहे हैं, उनको वृथा क्यों संकटमें डालें। जब कंठगत प्राण होचुके तब हारके श्रीमान्‌की शरण ली है। आपही उसको सुधारकर दुःख-सागरसे पार करेंगे "जैसे काग जहाजको सूझत और न ठौर"

(लीलादेवी मूर्छित होती है)

विज्ञान-चोबदार ! लीलादेवी मूर्छित होगई, सुगंधित सामग्री ला सचेत करो।

सत्संग (शीघ्रतासे) जो आज्ञा महाराज की।

(कर्पूरादि सुगंधित सामग्रीला देवी को चेताते हैं)

लीला-(सावधान हो) प्राणाधार ! यह क्या दुःखका पहाड़ एक साथ टूटपड़ा। ऐसी सुशीला पुत्रीके ऐसा कुपुत्र जन्मा कि जिसने ख्वारीके साथ सम्बन्ध किया

हाय ! सर्वरत्नों की खानि मेरी लाड़ली अमीरी बेटी और सर्वगुणनिधि धनदेव जामाता क्या इस दुर्दशाके योग्य है ! हाय विधाता तेरीगति जानी नहीं जाती, क्या इन्हींके दुःख निमित्त ख्वारीको रचाया ।

विज्ञान-देवी ! धैर्य धरो, धैर्य धरो, मुझ विज्ञानके होतेहुए तुम्हारे शोकका अवसर नहीं है तुम चाहो सो करसक्ती हो, आश्चर्य यह है कि आप सब लीला रचके स्वयं उसमें आसक्त हो दुःख पाती हो, जैसे मकड़ी जालेको पूरकर उसमें फंस दुःख पाती है फिर वही मकड़ी जालेको निगलकर स्वतन्त्र निर्लेप सुखी होजाती है । इसी प्रकार यह प्रपंच तुम्हारी ही रचना है लय करके सुखी होजाओ और यह बात कुछ विचित्रभी नहीं है। आपने अपना गुण ही यही वर्णन किया है कि-अघटित घटना पटीयसी फिर सोचका अवसर कहां है ।

हां स्वप्नवत् मिथ्या समझ, धैर्य्यधर, इनके दुःखकी निवृत्ति का उपाय करना योग्य है न कि अन्य के क्लेश से क्लेशित होना।

लीला-(धैर्य्यधर) श्रीमन् ! फ़क़ीरी बेटीका भी तो समाचार मंगाना चाहिये। उसे देखनेको मेरा चित्त बड़ा भटकता है दोनों बेटियों को जामाताओं सहित बुलाइये।

विज्ञान-(चोबदार ! आप जाओ, फ़क़ीरी बेटीको मनसहित लिवालाओ।

सत्संग-जो आज्ञा महाराज की।

(जाता है)

विज्ञान-धनदेव ! आपभी ज़रा तकलीफ कीजिये, अमीरी बेटीको जगत्कुमार सहित लिवालाइये।

धन-जो आज्ञा महाराजकी।

(जाता है)

लीला-प्राणनाथ ! आपका उपदेश परम सुखदायी है। मैं धैर्य्य बहुत बांधती हूँ परन्तु

मोहजाल ऐसा प्रबल है कि निकलनेनहीं देता।

विज्ञान-प्रिये ! मोहमहिमा तो प्रबल है ही। परन्तु यह सब आपही की करतूत है। केवल देहमात्र में ही प्रीति करने से सुख का समय किंचित् भी नहीं मिलता तो देह के अनेक सम्बन्धियों से प्रीति करने से सुख की आशा कहां है ?

सत्संग-(प्रणाम कर) श्रीमन् ! फ़क़ीरी देवी सहित मनदेव उपस्थित हैं।

(दोनोंका प्रवेश)

मन-(विज्ञानदेवके चरणोंमें शीश नवा) जयदेव !

(फ़क़ीरी देवी मासे मिलती है)

विज्ञान-(आसन दे) कहो पुत्र मन ! आप कुशलपूर्वक तो हैं ?

मन-श्रीमान्की कृपासे सर्वआनन्दहै।

लीला-(फ़क़ीरीको हृदयसे लगा, आंसुओंकी धारा बहा) बेटी तू प्रसन्नतो है ?

फ़क़ीरी-(गातीहुई)

रागझंझोटी पहाड़ी।

मैं अलबेली मेरा सतगुरु बेली,
गोविन्दके रंगरातीनि माये ॥ टेक ॥
भोग वैरागण सन्त सुहागण,
प्रभुसंग शीतल छातीनि माये॥१॥मैं०॥
लोकदिवानी सन्तसुजानी,
फिरतीहुँ हरिजस गातीनि माये॥२॥मैं०॥
नाम पियासी सतगुरुदासी,
हरिगुण भोजन खातीनि माये ३॥मैं०॥
सतगुरुशरणा जरा न मरणा,
लागे वाउ न तातीनि माये ४॥मैं०॥
जाती न पाती हरिरंगमाती,
बखशी सतगुरु दातीनि माये ५॥मैं०॥
हरि मन लीना जिम जल मीना,
तिस विन घड़ी न सुहातीनि माये॥६॥मैं०॥
दुनियां भोगा सोग वियोगा,
रोग कटे जिम कातीनि माये॥७॥मैं०॥
केशवस्वामी प्रभु अनुगामी,

पी पी नाम अघातीनि माये ॥८॥मैं०॥

माता ! आपकी कृपासे वैसे तो सर्व आनन्द है परन्तु इस समय चित्त दुचित्ता सा हो रहा है।

लीला-(घबड़ाकर) हैं दुचित्ता कैसा ?

फ़क़ीरी-माता घबड़ाने की कोई बात नहीं है, दुचित्ता इस प्रकार है-एक तो वर्षोंमें आपके दर्शन हुए, दूसरे आपके भेवते विचारमें मन पड़ा है।

लीला-(प्रसन्न हो शीघ्रता से) विचार कहां है, कैसा है, और उसको क्यों नहीं लाई हो ?

फ़क़ीरी-माता ! विचारकी तो कुछ लीला ही अपार है। जब से पैदा हुआ है परम सुख सम्पदासे गृह परिपूर्ण होरहा है। उसका स्वरूपभी परम शान्त मनहरण है। बाल्यावस्थामें ही चारों वेद, छःहों शास्त्र, आठों व्याकरण, अठारह पुराण,

पढ़कर विद्यावारिधि होगया है। चिन्ताकी बात केवल इतनी है कि वेदान्तमें अधिक प्रेम है और सन्तों ही में दिन रात बिचरता रहता है। देवता और सन्त उससे बहुत प्रेम करते हैं वैसे आरामदारी (निर्विक्षिप्तस्थिति)के संग विवाह तो उसका करदिया है हमको त्यागकर कहीं जा तो सक्ता नहीं परन्तु तौ भी ख्याल रहता ही है।

(विज्ञानदेव श्रवणकर प्रसन्न होते हैं)

विज्ञान-(चोबदार से) सत्संग! बिचारदेवके देखनेकी बहुत उत्कंठा है, लिवालाओ।

सत्संग-जो आज्ञा महाराजकी।

(जाता है)

(धनादिकोंका प्रवेश)

धन-(प्रणामकर) जयदेव!

विज्ञान-(आसनदे) चिरंजीव रहो, बेटी अमीरी तू अपनी मातासे मिल।

(जगत्कुमार चुरट पीते हुए चुरटमें बैठकर आते हैं

सत्संग (मनही मन) भाई वाह! चुरट तो बहुत अच्छा है मगर बीचमें जंगली कबूतर है (प्रकट) अजी सर्कार ! पधारिये, आपकी इन्तज़ारीमें अतिकाल होता है, ज़रा कृपाकरके कुत्तेको यहीं छोड़ जाइयेगा।

जगत्कुमार-जनाब ! आप घबराते क्यों हैं ? राजदर्बार में जाना लियाक़तके साथ होता है। ज़रा पान तो खा लेने दो।

(पानखा, हाथमें ले छड़ी, जेबमें डाल घड़ी,
थेथे जंटिलमैनका प्रवेश)

सत्संग-(गाताहुवा)

राग पहाड़ी।

आतमज्ञान विचार बन्दे,
क्यों मन मोड़ सन्तसभामें ॥ टेक ॥
कलियुग कामकी चढ़ी सवारी,
जिस जीवनकी करी है ख्वारी।
खड्ग वैराग संभार वन्दे॥ १ ॥क्योंमन०॥
मोह बली सबसे अधिकाई,

तिसके संग तू करियो लड़ाई ।
विवेक तमाचा मार बन्दे ॥२॥ क्योंमन०॥
इन्द्रिय चोर तेरे घरविच वसदे,
शुभगुण लूटें हँसदे हँसदे ।
होजा ज़रा हुशियार बन्दे ॥३॥ क्योंमन०॥
देहाभिमान चंडालतें भाग,
तातूं होवेगा वड़भाग ।
आतम ब्रह्म निहार बन्दे ॥४॥ क्योंमन०॥
कहते हैं केशवानन्द स्वामी,
सर्व घटांदा अन्तरयामी ।
तू है जगमें सार बन्दे ॥ ५ ॥ क्योंमन० ॥

महाराजाधिराजकी जय होय! (जगत्-कुमारकी तरफ़ संकेत करके) आप भी पधारते हैं।

जगत्कुमार-(झुककर सलामकर) हुज़ूर का क्या हुक्म है जो, खाकसारको याद फर्माया, बन्दा हाज़िर है।

विज्ञान-आओ बेटा जगत्कुमार मेरे पास बैठो।

(बैठता है)

(विचारदेव का प्रवेश)

विचार-(सर्वको प्रणामकर) श्रीमान् की क्या आज्ञा है ?

विज्ञान-(उचित आसनदे) हे विचार देव ! आपका भ्राता अज्ञानी बालक जगत्-कुमार दुःखमें सुखबुद्धि करके कुनारी ख्वारी को वर दुःख भोगरहा है इसको दुःखनिवृत्ति के मंत्रका चिन्तन करो।

विचार-श्रीमान् सर्वज्ञ सामर्थ्यवान् होकर भी जगत् की ख्वारीके दुःखकी निवृत्ति का भार मेरे ऊपर सौंपते हैं सो परमानुग्रह से दासका गौरव बढ़ाते हैं। दासकी समझमें जैसा कुछ आता है निवेदन करता हूं " भगवन् ! कारण के नाशसे कार्यका नाश स्वतः ही हो जाता है। संसारके दुःखका कारण अहंकार है, अहंकार के नाश होते ही सर्व दुःखों की निवृत्ति होती है। जगत्कुमारने पिता धन-देवके अहंकार से विषय प्रमादद्वारा ख्वारी

को सम्पादन किया है और अहंकार निमित्त से ही विपरीत बोध होकर ख्वारी को सुखबुद्धिसे भोगता है यदि अहंकार को त्यागदे तब सुखी हो। परन्तु पिता धन का अहंकार छूटना कठिनसा होरहा है, क्योंकि पिता मोहवशतः पुत्रको अपने आधीन नहीं रखता। फिर जब पुत्र स्वच्छन्द चेष्टा कर, बिषयी पुरुषोंके संगसे दुःख सम्पादन करता है तब पिता उसके दुःखसे स्वयं दुःखी होता है। इसीप्रकार धन तो विचारा भोला भाला किसीसे कुछ कहता सुनताही नहीं, जगत् उसको अपनी रुचि के अनुसार प्रमाद में ही लगाकर, दुःख-भागी होता है। और व्यर्थ चेष्टाकर अर्थ से अनर्थ करता है, क्योंकि वेदमें धनको अर्थ कहा है परन्तु यह सब दोष धनदेव जीका ही है, क्योंकि इसने मिलनेको आये हुए अपने पिता धर्म्मवीर का तिरस्कार

किया है तो फिर इनकी सन्तानसे इनको सुख किस प्रकार होसकता है। यदि यह धर्म्म का आदर करते तौ जगत्कुमार भी धनको धर्म्म में लगाता और इसका नाम अर्थ सार्थक होता और विद्वज्जनोंके धन्यवादका पात्र हो शोभा पाता। इसने अपने पिता धर्म्मका निरादर किया और इनको पुत्र जगत्ने अधर्म्ममार्गमें लगा इनका निरादर किया, सो यह दोष तो इनका है और जगत्के सिर मँढते हैं। भला इनके प्रबन्धको तो ख्याल कीजिये, गद्दीपर बैठते ही लोभको मंत्री बनाया, अहंकारको चोबदार खड़ा किया और शब्द--स्पर्श--रूप--रस--गंध-विषय द्वारपाल नियत किये। धैर्य धर्म्म-पिता माताका निरादर किया फिरभी आप सुखकी आशा करते हैं। चलनी में दोहै और कर्म्मको टटोवे; क्या आपने नहीं

सुना है 'महिमा घटी समुद्र की रावन बसे पड़ोस' विचारे सुनते कहांसे, सुनानेवालों का तो पहलेही रास्ता बन्द कियागया कि जंटिलमैनोंके सिवाय धनको कोई मिलही नहीं सकता। इस प्रकारका प्रबन्ध और सुखकी आशा, धन्य है धनकी समझ को, अस्तु, अबभी जो आपकी शरण ली है सो यह अमीरीदेवी का ही प्रभाव है क्योंकि पीछे समझने की अमीरों में शक्ति स्वतः ही रहती है सो सत्संग द्वारा अपने पिता, माता धैर्य-धर्म को खोजकर उनकी सेवामें तत्पर हों तो सुखी हो सकते हैं वरना आनन्द। जब धन-देव प्रमादी पुत्र जगत् से उपराम हो पिता धर्म की सेवामें तत्पर होंगे तब सन्तों की कृपासे परमात्मदेव राम उदयहोगा और जगत् पुत्र पिता के मार्गपर चलनेसे ख्वारी को स्वयं त्यागदेगा तब पिता पुत्र सर्व सुखीहोंगे। अहंकार चोबदार द्वारा

लोभ मंत्री की मिथ्या रिपोर्टोंसे आपको लाभ होगा।

विज्ञान-हे विचारदेव ! तुम्हारा मन्तव्य अतिउत्तम है। तुम्हारे स्वरूप से मैं परम प्रसन्न हूं, आपके जैसे गुण सुनेथे उससे अधिक पाये।

विचार-(हाथ जोड़कर) मैं तो इस प्रशंसा के योग्य नहीं हूँ परन्तु श्रीमान् हरप्रकार से मेरा गौरव ही बढ़ाते हैं और इससे आपही की शोभा है, मैं आपका हूं। परन्तु इस समय प्रथम भ्राता संसार के दुःखनिवृत्ति का उपायही कर्तव्य है।

विज्ञान-(धनसे)हेधनदेव! तुमने अमीरी को प्राप्त होकर अपनेको अमीरमान, अहंकार चोबदार को हर समय अपने समीप रखने से संसार ऐसा पुत्र उत्पन्न किया कि जो अपनी नासमझी से विद्या से विमुख रहकर कामादि दुर्जनोंके संग

से ख्वारी नारी वरकर संकट पारहा है। जो पिता बाल्यावस्थामें पुत्रको अधीन न रखकर विद्याभ्यास नहीं कराता सो पुरुष तुम्हारे जैसा ही दुःख पाता है। स्त्री पुत्र को सदैव स्वाधीन रखना चाहिये। यह अज्ञानी होनेके कारण स्वतंत्र होकर स्वयं नष्ट भ्रष्ट हो सम्बन्धियोंको भी संकट में डालते हैं इसीकारणसे तुम्हारा पुत्र भी कुनारी ख्वारी के वश होकर मर्कट के समान नाचता है। जबकि बड़ेही मर्य्यादा को भंग करेंगे तो छोटे कैसे बांध सकतेहैं। जगत्कुमार मर्य्यादा भंग होनेहीके कारण स्वतंत्र होकर धनको ज्वारी तथा कंजरों की गलियों में ख्वार करता है और वहां धनको हार हाथझाड़ घरको आता है। यदि ज्वारी परनारीके संग पकड़ा जाता है तो भी तुम्हारे ही ऊपर चोट आती है, रिशवत दे साफ बचकर अलग जाता है।

ऐसी दशाको देखने वाले योग्य पुरुष कहते हैं-भला ऊत का ऊत भया; यह वार्ता सुनकर हमको बड़ी लज्जा आती है। और हरदम यही विचार रहता है कि किसी प्रकार संसारकी ख्वारी दूर हो और जगत को सुखी देखें। परन्तु यह ऐसा ढीठ है कि लज्जा आदि कन्याओंको छोड़, ख्वारी से ही मन लगाता है जैसे दीपक में पतंग जल मरता है तैसेही पुरुष कुनारीके संग कुरोग में फँसकर जल मरता है और जिस समय देह पुष्ट निरोग होता है तबभी रामचरण में प्रीति नहीं करता, दिन रात कुनारियोंके ही संग समय व्यर्थ खोता है। फिर जब उनके संग से कोई कुरोग उत्पन्न होजाय तो संतोंके पास जाकर कहता है कि हा हा संतजी! मैं मरा, मेरी रक्षा करो, जब संत यह कहते हैं कि हे भगत! प्रथम तू कुनारी ख्वारी का संग

त्याग, हमारे पास रहकर भगवत् भजन कर, तब हम तेरेवास्ते औषध का विचार करेंगे। नारीका त्याग, भगवत् भजनका नाम सुनतेही चौंक पड़ता है और कहता है कि हमें क्या बाबाजी होना है जो तुम्हारे पास रहें। चाहे हम इस रोगसे मर क्यों न जावें परन्तु आपके पास कभी न फटकेंगे। हे धन! यह सब दोष तुम्हारेही हैं क्योंकि धर्म, राजा, चोर अग्नि तुम्हारे चार भागी हैं। यदि प्रथम तुमने गद्दीपर बैठते ही धर्म का तिरस्कार करदिया तो फिर यह तीनों तुम पर क्यों न झपटेंगे। इस प्रकार तुम्हारी बरबादीकरनेसे जगत्कुमार की भी बुद्धि ऐसी मलिन होती है कि निरपराध प्रजाको कष्ट ददे धन संग्रह कर, मदिरा पान आदि अनर्थ में लगा अन्तमें कष्टभागी होता है और अपने पवित्र मातृकुलको कलंकित करता है, इसमें हम को बड़ी लज्जा आती है। परन्तु यह सर्व

अपराध तुम्हारे ही हैं क्योंकि तुमने इस को सदैव नीति के विरुद्ध लाड़ प्यार किया है—

लालयेत् पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणि ताड़येत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्॥

पांच वर्षतक बालकका लालन पालन करना चाहिये। छः वर्ष से लेकर १० वर्ष तक, दशवर्ष ताड़ना करनी उचित है और सोलहवर्षके उपरान्त पुत्रसे मित्रके समान आचरण करना योग्य है।

लालने बहवोदोषास्ताडने बहवो गुणाः।
तस्मात्पुत्रं च शिष्यं च ताडयेन्न तु लालयेत्॥

लालनसे अवगुण गहै, ताडनसे गुणज्ञान।
जाते बालक ताड़िये, लालन भलौ न जान॥

इसप्रकार नीतिके विरुद्ध आचरण करने से दुःखरूप फल तुम्हारे सन्मुख हुवा है। अबभी तुम पुत्रके मोहको त्यागो और पिता धर्मके चरणोंमें अनुराग करो तब तुमको परमसुख होगा। पुत्र तो स्वयं ही

कुनारी-ख्वारीरूप खुमारीको त्याग देगा और तभी मेरा उपदेश भी सार्थक समझा जायगा।

धन-(हाथ जोड़कर) आपने हम पिता पुत्र दोनोंको अपने उपदेश द्वारा कृतार्थ किया है, आपके इस महान् उपकारके धन्यवाद देनेकी वाणीमें, शक्ति नहीं है। मैं केवल इतनाही कहसक्ता हूँ, कि कल्प-वृत्तरूप आपसे मैं पूर्ण मनोरथ हुआ। यह कथन आपका यथार्थ है मैं अबतक इस अयोग्य पुत्रके मोहवश था इसीसे सबही ख़राबी हुई। यदि आपके उपदेशने मेरे चित्तपर इतना असर डाला है तो आशा होती है कि श्रीमान्के कृपापात्र जगत्-कुमारपर भी पूरा २ असर अवश्य होगा। परन्तु श्रीमान्से सविनय यह प्रार्थना है कि कुछ थोड़े दिनतक विचारदेवका संग हमको रहे तब सुधार होसक्ता है। सूर्य

के उदय हुए बिना अंधकारका नाश नहीं होता।

विज्ञान-हे विचारदेव ! आप इस जगत्-कुमार अपने भ्राताके ऊपर परम अनुग्रह करके इसके सुधारका उपाय करो। भ्राता का यही धर्म है कि भ्राताकी दुःखसे रक्षा करे और धनदेवभी श्रद्धापूर्वक चाहते हैं।

विचार-आपकी आज्ञा सर्वोपरि है और मुझे स्वीकृत है। परन्तु एक प्रार्थना है कि यह लोग अपनेको अमीर मानते हैं। यदि अहङ्कारसे मेरे कहेको न माना तो उपदेश व्यर्थ होगा और मेराभी अमूल्य समय निष्फल जायगा।

धन (दीनतापूर्वक) नहीं २ विचारदेव जी ! हम आपकी आज्ञाके विरुद्ध कदापि नहीं चलेंगे। आपके बिना हमने बहुत कष्ट पाया है, इससमय कंठगत प्राण हैं बचाओ।

जगत्कुमार-(विचारके चरणोंमें सिर धर) सच्चे भ्राता आपही हैं, जो आपके

दर्शनमात्र ही से दुःख निवृत्त हुआ जाता है। धन्य है आपको। (आतामें अधिकर प्रेम बढ़ता है)।

सत्संग-(मनही मन) शुक्र है कि जो जनाबको अबतक चुरट पीने और कुत्तेसे प्यार करनेकी याद नहीं आई। (प्रकट) कोटानुकोट धन्यवाद है श्रीमान् विज्ञान-देवकी सभाको कि, जिसमें ऐसे २ फोके जेंटिलमैन सीधे होजाते हैं, क्यों न हो, जिसके श्रीमान् विचारदेव प्रधान मंत्री हैं।

विचार-हे धनदेव! यदि आपकी ऐसी ही श्रद्धा है तो प्रथम अपने पिता-माता धैर्य धर्मको खोजकर उनका सेवन करो। धर्मनिष्ठ हूए बिना मोक्षसाधनमें प्रेम होना असम्भव है।

धन-(सिर धुनकर) हाय २ हाय!!! मैं बड़ाही अधम हूँ कि जिसने द्वारपर आये हुए पूज्यपाद पिता धर्मवीरका अहंकारद्वारा तिरस्कार करदिया। हाय!

अब वह मुझ पापीको कहाँ और कैसे मिलेंगे। हाय किधर जाऊँ, कहाँ ढूंढू, कौन बतावे।

(रोता है)

विचार-नहीं नहीं घबराओ मत। धनदेवजी आपतो समर्थ हैं कुसंगके प्रभावसे अपने स्वरूपको भूलगये हो। चलो मैं बताता हूँ, प्रमादियों से तिरस्कृत हुआ धर्म विरक्त हो-फ़क़ीरोंमें रहता है।

धन-(प्रसन्न चित्त) श्रीमान्ने बहुत अच्छा कहा है। बेशक वहीं पायेंगे चलिये।

विज्ञान-पुत्र विचार ! तुम्हारा विचार बहुत उत्तम है। सब जने जाओ। तीर्थयात्रा करते हुए संतों के दर्शन करो और धर्मवीर भी वहीं पावेंगे। धनसे तिरस्कृत हुए २ धर्मने मेरेसे आकर कहा, मेरा बेटा धन मेरा आदर नहीं करता, अब मैं कहां

जाऊं, क्या करूं आज्ञा दीजिये। तो मैंने कहा कि जो करेगा सो पावेगा, आप सन्तोंमें निवास करो। वह सन्तमंडलीमें गया है। धर्मकी सन्त भलीप्रकार रक्षा कररहे हैं। यदि धर्म संतोंसे सुरक्षित न होता तो इतरजनोंके आलस्य और अयोग्यतासे न जाने किस अधोगतिको प्राप्त होता, फिर उसका मिलना दुर्लभ था। अब सबजने जाओ और लीलादेवी तुम भी यात्रा करआओ।

लीला-प्राणनाथ ! मेरे तो सर्व तीर्थ आपही हैं, मैं आपको त्यागकर कहां जाऊं, कहीं छाया भी पुरुषसे पृथक् होसक्ती है। हमको तो यही बड़ा हर्ष है कि अब कुछ ठंडी २ सुखकी हवा आने लगी। मारे चिन्ताके प्राण पयान किये देतेथे, परन्तु इस ऋषिकुमार विचारदेवके विचार से कुछ सहारा होता है। देखें परिणाम क्या हो।

विज्ञान-देवी ! घबराओ मत, परिणामभी अच्छा होगा। जिससमय पुत्रके न होनेसे आपको चिन्ता हुई थी मैंने उसी समय कहदियाथा कि फ़क़ीरी बेटी ही बड़े २ महानुभावोंकी सभामें सत्कार पाती हुई, मातृ-पितृ-कुलके गौरवकी फौहराती हुई धवलध्वजा सर्वोत्कृष्टशोभायमान् होगी सोई आपकी दृष्टिके सन्मुख वर्तमान है। (चोबदारसे) सत्संग ! तुमभी इनके संग जाओ, तुम्हारे होतेहुए इनको किञ्चित्भी कष्ट न होगा। कल प्रातःकाल प्रस्थान करना, अब संध्याका समय हुआहै।

(सर्वका प्रस्थान)

✱षष्ठ अङ्क✱

(स्थान तपोवन)

(श्रीमती भागीरथी गंगाजी गहर गंभीर प्रवाहसे बहरही है, तटपर विरक्त सन्तोंकी पर्णकुटी पृथक् २ शोभायमान होरही हैं, वृक्षोंकी शाखाओंपर काषायवस्त्र सूखते हुए सत्संगियोंका मन हरण कर रहे हैं। मायाकुंडके समीप ज्ञानगूदरीमें सन्तोंकी सभा लगी हुईहै। (विचारदेवको आगे कर धनादिक गोदावरी, नर्मदा प्रयागादि तीर्थोमें यात्रा करते हुए भागीरथी गंगाजी स्नानकर तपोवन (ऋषिकेश) पहुंचते हैं ।

(विचार आदिकोंका प्रवेश)

विचारदेव-(सन्तोंको नमस्कार कर) धनदेव ! सन्तोंको प्रणाम करो। भय्या जगत्कुमार ! सन्तोंके चरणोंकी धूली मस्तकसे लगा। (सब नमस्कार करते हैं) देखो गंगाजीके तटपर तपोवनकी क्या अनुपम शोभा है ।

सर्वसन्त-(हर्षितहो) आओ २ विचार-देवजी! आप कहां पधारगये। भगवन् अपा

के यहां न होनेसे तपोवनकी कुछ औरही दशा होजाती है। सन्त आपसमें उपद्रव करने लगते हैं। कोई कहता है कि-यह पत्थर भोजन करनेके वास्ते मैंने आप लाकर रक्खा है तुम इसपर कैसे भोजन करसकते हो। कोई कहता है देखोजी, हमारे बाड़की हद्दसे अपनी कुटिया मिलाकर न बनावो, इत्यादिक मामूली २ बातोंपर उपद्रव करते हैं। कोई कहता है हम सबसे तीखे विरक्त हैं। हमारी कुटिया सबसे परे निराली है, उसमें हमारी एक खपरीही टंगी है, उसके सिवाय और हम कुछ नहीं रखते, इत्यादि-अविचारकी बातें आपके न होनेपर होती हैं, मैत्री करुणाकी तो चर्चाही क्या है। और जो आप यहां होते हैं तो सर्व सन्त स्वतः ही ध्यान, धारणा, समाधिमें तत्पर रहते हैं, उत्थान होकर भी शास्त्रका पठन पाठन करते हैं। विचार

पिना सब ख्वार रहैं आओ प्रसन्न तो रहे ?

(उत्तम आसन देते हैं)

विचारदेव-(गाते हुए)

राग आसावरी-ताल त्रैधीमा ।

सन्तों मैं मस्ताना जोगी,
निजानन्द रस भोगी ॥ टेक ॥
हर्ष शोक मोहि व्यापै नाहीं,
नहिं संयोग वियोगी ॥ १ ॥सन्तों मैं०॥
वाद विवाद न मोकों भावे,
निर्विवाद रस भोगी ॥ २ ॥सन्तों मैं०॥
ना हम चित्त चिकित्सा करते,
ना दुख दुविधा रोगी ॥ ३ ॥सन्तों मैं०॥
वेद शास्त्रको सार निचोड़े,
ना हम गाहक फोगी ॥ ४ ॥सन्तों मैं०॥
अचिन्तकिअन्त बसे मनहमरे,
कभी न होवें सोगी ॥ ५ ॥सन्तों मैं०॥
केशवानन्द अनन्द मगन मन,
हम नहिं जानत लोगी ॥६॥ सन्तों मैं०॥

धनदेव-(संतोंके गलेमें पुष्पमाला पहि-

राय फल आदि भेटकर) नारायण ! अहोभाग्य है मेरा जो आज विचारदेवके प्रतापसे सन्तोंके इस मनोहर मण्डलका दर्शन लाभ हुआ है।

वृद्धसन्त-(दूसरे सन्तसे) सन्तजी ! फल आदिक सन्तोंको बरताओ और सीत-प्रसाद जगत्को खिलाओ, ख्वारीको दूर भगाओ।

(जगत्कुमार प्रसाद पाता है और उस के विरहमें व्याकुल हुई २ ख्वारी मिलनेके वास्ते ढूँढती २ आती है । जगत्को विचारयुक्त सन्तोंकी मंडलीमें प्रसाद पाते देख, भयसे समीप पहुँचनेमें असमर्थ हुई २ सब के देखते हुए विरहरूप दुःखसे विकल होकर गाती है)

राग झंझोटी पहाड़ी।

दरश प्यासी फिरा मैं उदासी,
इक पल दर्शन देहु महाराजा ॥ टेक ॥
नैन खुमारी चढ़ी बेशुमारी,

छम छम वर्षे मेहु महाराजा॥१॥ दरश पि०
पन्थ न दीसे पग मैंडा खीसे।
मनमें पूरा नेहु महाराजा॥२॥ दरश पि०॥
करूं दवाई लगे न काई,
बहु धन कीया खेहु महाराजा॥३॥दरशपि०
जगसुख डीठा लगे न मीठा,
मनको मिलन थेहु महाराजा॥४॥दरशपि०
केशवानंदा तू जग चंदा,
देहु वा नैनको लेहु महाराजा॥५॥दरशपि०
(इस प्रकार गातीहुई विरहरूप ज्वालामें भस्महोजातीहै

सत्संग-(कटाक्षसे) कुँवरसाहब! देखिये, आपकी सुमुखी भस्म होरही है, क्या सत्य स्नेह इसीको कहते हैं कि प्राणप्यारी अपने प्राणदान करे और आप बैठे २ देखें, धन्य है! क्या पतंगका सत्य स्नेह नहीं है कि जो अपने प्यारे दीपकको जलता हुआ देख स्वयं भी जल मरता है। अरे बाहरे पतंग! क्षुद्र पक्षी होने परभी तेरा यह साहस। हे मित्र! एक संकल्प तो मन

का मनमें ही रहाजाता है कि सत्ती तो बहुत हुई हैं पर सत्ता कोई नहीं हुआ।

विचार-हे धनदेव ! देखो ख्वारी कैसी दशासे प्राण त्याग रही है।

धन-(हर्षित हो ! हाथजोड़) महाराज! आपकी कृपासे संतोंके सीत प्रसादका यह फल है।

अमीरी (हेबहिन फ़क़ीरी ? आज आप का समागमन सफलहुआ है संतोंके प्रताप से संसारकी ख्वारी हमारा प्राणकंटक दूर हुई, धन्य है आपको।

फ़क़ीरी-हे बहिन अमीरी ! अबतो तुम बड़भागिनी हुई हो कि जो पति पुत्रसहित सन्मार्ग में चलरही हो इसीसे कुनारी ख्वारी का भी डाहजातारहा।

अमीरी-(हे बहिन ! यह सब तुम्हारे शुभ सन्तान विचारदेवकी कृपाका फल है और हमारे बड़भागी होनेका हाल सुनिये

देवी! आपकी दयासे मेरेको धन पति मिला, अमीरी नाम पड़ा, परन्तु न मालूम कौन से पापका फलरूप जगत् कुपुत्र हुआ कि जिसने सब अमीरी धूलमें मिलादी। दिन में झूँठ पाखंडादि व्यापार करता, रातको कुनारियोंके संग मदिरापान आदिसे जन्म भ्रष्ट करता था, माता पिता गुरु और ईश्वरकी भक्तिका लेशभी जिसके समीप न था। इसीप्रकार बाल-युवावस्थारूपी रत्नको खो वृद्धावस्थारूप धूलको समेट, हाथ मल मलकर पछिताता तो फिर क्या करलेता। पति बिचारा धन सीधा साधा संसाररूप पुत्रके वश हुआ धक्के खाता फिरता था, कभी कंजरोंके, कभी कलारों के और कभी जुआरियोंके घरोंमें दुर्दशा भोगता था; इसप्रकार मैंने पति, पुत्र दोनों का लेशमात्र भी सुख नहीं देखा। फक्त कागजोंके ऊपर ही लिखा हुआ देखा कि इसकी लाखकी इसकी करोड़की अमीरी

है। हे बहिन! हमको आरामका लेशमात्र भी नहीं, हम अमीर ऊपरसे ही सुखी दीखते हैं, अंतरमें अनेक चिन्ताओं से दुःखी हैं, बाहिरसे कोठा, बँगले, महल, चौबारे चमकते हैं। द्वारपर घोड़ा हींकते, हाथी झूमते हैं। इसरीतिसे हमारे ऊपर के ही ठाठ बाट बने हैं। अंदरसे चिंता-रूपी चितापर जले जाते हैं इसकारण कभी हमारी छाती शीतल नहीं होती। पिता विज्ञानदेवने मेरा नाम तो अमीरी धरा है परन्तु मारवाड़ देशमें चींटीके समान सुखकी प्यासी फिरती हूँ, ऐसी दशामें मेरा नाम कीरी होता तो बहुत अच्छा होता। जैसे किसी ग़रीब आदमी का नाम लोगोंने ठंठनपाल रखलिया सो इस नामसे दुःखी होकर नाम बदलने चला कि-जिस किसीका अच्छा नाम देखूंगा वही अपना धरलूंगा। मार्गमें एक

लड़कीको कंडे बीनते देखकर विचारा कि जो इसका नाम होगा सोई अपना धर लूँगा। पूछा कि तेरा क्या नाम है? उसने कहा मेरा नाम लक्ष्मी, नापसन्द आया। आगे हल जोतने वालेसे पूछा उसने अपना नाम धनपाल बताया सोभी नापसंद आया आगे एक जन्मके रोगीसे पूछा उसने अपना नाम तनसुख बताया बस वहीं रुकगया और कहने लगा—

कंडे बीनत देखी लक्ष्मी,
हल जोतत देखे धनपाल।
जन्मके रोगी तनसुख देखे,
तासे चोखे ठंठनपाल॥

हे बहिन! इसप्रकार अमीरी नामसे हमारा नाम कीरी होता तो चोखा था। हम अमीरी रोग शोकसे ग्रसित हैं और आप फ़क़ीरी परम सुखमूर्त्ति अपने चरणों

की धूलिसे हमारा नामभी सार्थक करती हैं। जैसे तुम्हारे पुत्र विचारदेवके प्रतापसे धन और जगत्‌ने संतोंकी शरण ली तो आज मुझे अमीरी का दिन देखनेको मिला कि जो पुत्र जगत्‌की ख्वारी दूर हुई। आज कलके अमीर तो नाममात्रके ही अमीर हैं, अंदरसे बिल्कुल कीर हैं।

विचार-हे सन्त गुरुदेवजी! जिसप्रकार जगत्‌का क्लेश दूर हो और अमीरीका संताप मिटे ऐसा उपदेश करो। धारणावाले सन्तोंके उपदेशसे ही जिज्ञासुओंको लाभ होता है, आजकल जगह २ सकामसापेक्ष उपदेशकों के झुंडके झुंड डोलते हैं परन्तु जगत्‌की दुर्दशाको दूर नहीं करसक्ते क्योंकि जिसके अपने ही हाथ बंधे हैं वह दूसरेके क्या खोलसक्ता है। इसकारण निरपेक्ष आप लोगोंका ही उपदेश कल्याणकारक होता है।

सन्त-हे जगत्! जन्मादि दुःखसमुद्र से पार होनेकी तुम्हारी इच्छा है तो भक्ति करो। परमेश्वरके जिस नाममें तुम्हारा अनुराग हो उसको जपो। नाम जपनेसे चित्त शुद्ध होकर भक्तिमें तत्पर होवे, (भक्तिर्भगवती चित्तैकतानता) भगवान् में चित्तकी एकाकारताको भक्ति कहते हैं सो जबतक नामस्मरणादिसे चित्त शुद्ध नहीं होता तबतक भगवान्में एकाकारता को नहीं प्राप्त होता। और परमेश्वरकेसर्व नाम मोक्षके साधनरूप हैं परन्तु सर्वनामों के ऊपर सत्य नामको भगवान्ने मुकुट-मणि किया है; हे जगत्! इसकारण तुम सत्य नाम को जपो, तुम्हारे सर्वमनोरथ पूर्ण होंगे। ईश्वरका स्वरूप सत्य है और नामभी सत्य है, इसकारण सत्य नाम सर्वोपरि है; इसको जो कोई जपेगा, सुनेगा, सो इस लोकमें सुखीरहेगा, पर-लोकमें मोक्ष पावेगा। हे जगत्कुमार!

दाम, चाम, धाम, ग्राम, से जब तुम्हारी ममता छूटेगी तब दृढ़भक्ति होनेसे आत्म-साक्षात्कार हो कल्याण होगा। हे जगत्! तुम्हारेमें जड़, चैतन्य दो भाग हैं। नामरूप जड़मायाका अंश है और अस्ति, भाति, प्रिय चैतन्य अंश हैं सो अबतक तो तुमने नामरूप जड़मेंही आसक्त हो जड़बुद्धि होनेसेही अपनी ख्वारी कराई है, अब मिथ्या माया के अंशको त्यागकर चैतन्यको अपना आत्मस्वरूप समझो, तुम्हारा संशय विपर्यय दूर होगा—

(श्रवणकर जगत् कृतकृत्य होता है)

अमीरी-हे बहिन फ़क़ीरी! आपका अहोभाग्य है कि ऐसे निर्वाणपदमें स्थिति वाले सन्तोंके समागम में आपका निवास है। अब मेरे को आपके निवास-आश्रम के देखनेकी उत्कंठा है सो दिखाइये।

फ़क़ीरी-हे बहिन! सन्तोंके मुखकमल को देखो, यही मेरा निवासस्थान है। इनका

दर्शन मेराही दर्शन है और सन्तोंके हृदय में मेरे पति शुद्ध मन विचार पुत्रसहित रहते हैं और ब्रह्मरन्ध्र (दशमद्वार) में हमारे तुम्हारे पिता विज्ञानदेव निवास करते हैं।

अमीरी-हे बहिन! मैं तुम्हारे स्वरूपको भी जाननेकी इच्छा करती हूँ।

फ़क़ीरी-बेपरवाही (निरपेक्षता) मेरा स्वरूप है जिसको मेरा स्वरूप प्राप्त हुआ सोई राजाधिराज है और जो स्वतःही आय प्राप्त हो उसमें सन्तोष करना यही हमारी गुजरान है।

अमीरी-हे बहिन! लोकमें प्रसिद्ध है कि फ़क़ीरी धारनी कठिन है सो यह सत्य है वा मिथ्या?

फ़क़ीरी-हे बहिन! यह बात सत्य है कि-फ़क़ीरी धारनी कठिन है परन्तु एक फ़क़ीरी ही धारनी कठिन नहीं बल्कि फ़क़ीरी

अमीरी दोनों धारनी कठिन हैं क्योंकि हम तुम दोनों विज्ञानदेवकी पुत्री हैं विज्ञानके अक्सको धारके ही मन धनसे हम तुम विवाही हैं इसकारण विना विज्ञानके अमीरीकी शोभा नहीं और विज्ञान बिना फ़क़ीरी भी नहीं फलती इसवास्ते दोनों कठिन हैं। जो अहंकारसे रहित बुद्धिमान् अमीर है सोई शोभा पाता है निर्बुद्धि अमीर दिन भर कचहरियों में धक्केखाते, रात में कुनारियोंके संग कुरोग उत्पन्न करते हुए अमीरीको धब्बा लगाते हैं इसीप्रकार बुद्धिमान् फ़क़ीरही ध्यान धारणाशक्तिद्वारा शोभा पाता है और बुद्धिहीन फ़क़ीर गृह आदिको छोड़, देह में ममत्व कर कि मैं बड़ा विद्वान् हूँ, लोक में पूज्य हूँ, मैं बड़ा महन्त जागीरदार हूँ, ब्राह्मणादि वर्णाभिमान को त्याग ब्रह्मचर्य आदि आश्रम में अभिमान करता है कि-

मैं ब्रह्मचारी हूँ, संन्यासी हूँ और अल्पशिखा के अभिमान को त्याग जटाओं के समूह में अभिमान करता है और वाणीके विलासमात्र ही आश्रमके अभिमानको त्याग अवधूत परमहंसपदका अभिमान करता है कि-मैं निराश्रमी अवधूत हूँ, वस्त्र नहीं धारण करता हूँ और शीतनिवृत्तिके लिये बादाम, केसर, कस्तूरी आदि पदार्थोंका ध्वंस करता है। हे बहिन ! इस लौकिक फ़क़ीरी से परमार्थी लाभ नहीं होता, बल्कि ऐसे निर्बुद्धि पुरुषोंके संगसे फ़क़ीरी भी बदनाम होती है। हे अमीरी ! मैं फ़क़ीरी शुद्ध मनकी नारी, मेरा बेटा ब्रह्मविचार है। जो फ़क़ीर मनको शुद्धकर, विवेक वैराग्यादि दैवसम्पत्तिके गुणोंको धारण करता है सो ब्रह्मविचारद्वारा आत्म-साक्षात्कार कर, फ़क़ीरीको शोभनीय करता हुआ मोक्षको प्राप्त होता है। इस

प्रकार फ़क़ीरी, अमीरी दोनों धारणा कठिन हैं। इनका धारना किसी माई के लालका ही काम है।

अमीरी-हे बहिन! मैं नहीं जानती थी कि तुम्हारा ऐसा प्रभाव है। क्यों न हो मातृ पितृकुलका उद्धार करनेवाला विचार जिसका पुत्र है, धन्य है आपको।

विचार-हे जगत्कुमार! अब आपको अपने अमीरी खान्दानका अभिमान है या नहीं ?

जगत्कुमार-श्रीमन् ! आप सरीखे बंधुओंके होते हुए फिरभी अभिमान रह सक्ता है? कदापि नहीं।

विचार-हे कुमार! अभी आप बन्धु (भाई) का संबन्ध मानते हैं इससे ज्ञात होता है कि अभिमान नहीं गया। हे जगत्कुमारजी! अभिमान ही सुरापानके समानहै। बाह्य सुरापान तौ कुछकाल मद करके नशा उतर जाता है परंच इस अभि-

मानका नशा उतरना दुर्लभ है। और परमात्माको अहंकार अच्छा नहीं लगता। गुरु नानकदेवजी कहते हैं कि—

"हरिजि हंकार न भावई वेद कूक सुणावे"

परमेश्वरको अभिमान अरुचिकर है, वेद पुकारके सुनाता है और विद्वानोंका भी यह कथन है:—

अभिमानं सुरापानं गौरवं घोररौरवम्।
प्रतिष्ठा सौकरी विष्ठात्रयं त्यक्त्वा सुखीभवेत् ॥१॥

अभिमान मदिरापानके समान है, अपने को बड़ा मानना घोर नरक भोगना है। और मैं लोकमें बड़ा प्रतिष्ठित हूँ ऐसा अभिमान सूकरविष्ठा के समान है। इन तीनोंको त्यागने से अविनाशी सुख मिलता है।

जगतकुमार-(हाथ जोड़कर) जबसे श्रीमान्का दर्शन वा उपदेश हुआ है तब से अभिमानको, तह करके ताक़ में धर दिया है। हां! आपके सुबंधु होनेका पूरा

ख्याल है और यह सम्बन्ध सदैव रहने वाला है। अगर भ्राता का संबन्ध न रहा तो गुरु शिष्यका सम्बन्ध परलोक तक है।

(धैर्यसहित धर्मवीर का प्रवेश)

सन्त-(प्रसन्न होकर) आओ ! आओ !! आओ!!! धर्मवीरजी, आप कहां पधार गये।

(उत्तम आसन देते हैं)

धर्म-हे भगवन् ! विचारदेवजीके यहां से पधार जानेपर मेराभी मन नहीं लगा सो मैं श्रीगंगाजी के तीरे २ श्रीकाशी विश्वनाथजी के दर्शनों को गया था अब फिर उपस्थित हुआ हूँ, मैं गंगाकिनारा छोड़कर कहीं नहीं जाता हूँ।

धन-(पिता धर्मके चरणों पर गिर) त्राहिमाम् त्राहिमाम्, हे नाथ ! मैं बड़ा अपराधी हूँ, मैंने आपका निरादर कर सकुटुम्ब बहुत दुःख पाया है। जैसी २ मेरी दुर्दशा हुई है मैं कह नहीं सक्ता।

(फिर रोता है)

विचार-हे धर्मवीरजी। यह आपका पुत्र धनदेव है इसके सिरपर हाथ रक्खो। इसने अपनी मूर्खता से आपका तिरस्कार किया था सो उसका फल बहुत भोगा है। अब क्षमाकरो! सुबहका भूला शामतक घर आजावे तो भूला नहीं कहाजाता।

धर्म-हे विचारदेवजी! मैं आपके सन्मुख कुछ कह नहीं सक्ता हूँ, जैसी आपकी आज्ञा होगी वैसा ही होगा। इसने मेरा तिरस्कार नहीं किया था बल्कि अहंकारी देखकर मैंने इसको स्वयंही त्यागदिया है। हां! इसकी माता धैर्य तो बहुत अधीर हुईथी कि-आपके त्याग देनेसे इस को बहुत संकट होगा परन्तु स्त्रियोंको मोह अधिक होने से मैं ने इसके कथनपर ध्यान नहीं दिया और सीधाही गंगातट चला आया, तबसे मैं यहीं रहता हूँ और अब मुझे इसकी कुछ पर्वाहभी नहीं है

क्योंकि मेरा मन बेपर्वाह सन्तोंमें लग गया है।

विचार-हे धर्मवीरजी ! यद्यपि आप को कुछ पर्वाह नहीं है तथापि शरणागेह की लाज तो अवश्य ही होनी चाहिये। इसके सिरपर हाथ रक्खो कि जिससे इसका धैर्यरूप मातासे मिलान हो।

धर्म-जो आपकी आज्ञा।

(धनके सिरपर हाथ रखता है और धन धर्मसे मिलकर बावन हो धैर्य माताके चरणों में पड़ता है।

धन-बेटा जगत्कुमार ! तुमभी अपनी मातासहित बाबा, दादीको प्रणाम करो बेटा ! धैर्य धर्मसे परमसुख होता है-"धर्म्म एव हतोहन्ति धर्म्मोरक्षति रक्षितः" जो धर्म को हत करता है सो स्वयं हत होता है और जो धर्मकी रक्षा करता है सो धर्म करके रक्षित होता है।

(दोनों प्रणाम करते हैं)

अमीरी-बेटा जगत्कुमार ! अपने पिता धनको साथ लेजाकर हलवाईकी दुकान

में जाओ और संतोंकी भिक्षा भोजनका प्रबन्ध करो। खीर, पूरी, लड्डू, पेड़ा आदि उत्तम २ पदार्थ तैयार करो। बेटा 'यह धन धर्महीसे पायो' अपना धन वही है कि जो सन्तोंकी सेवामें लगे !

(बनाकर ला सन्तोंको भोजन कराते हैं)

सब सन्त-(मिलकर गाते हैं)

राग कल्याण ताल कहरवा।

नाम मिठाई जन सुखदाई,
रसिक २ भुञ्जौ मेरे भाई ॥ टेक ॥
मीठी मिसरी मीठा अंगूर,
मीठा अमृत जग मशहूर।
कामिनी अधर झूठ मिठाई ॥ १ ॥ रसिक० ॥
हरिगुण-मैदा-शांति गंगाजल,
बुद्धि-कड़ाही स्नेह-घी तल।
ममता काठी हेठ जलाई ॥ २ ॥ रसिक० ॥
ज्ञान-अग्नि जब भई प्रचंडा,
प्रेम नेम मिले जलखंडा।
चाहा चासनी पाक मिलाई ॥ ३ ॥ रसिक० ॥

श्रद्धा दाम धरे जब गाहक,
हरिगुण नाम मिठाई चाहक।
नाम संत देवैं हलवाई ४ ॥ रसिक० ॥
मन मुख माखी छोहण न पाई,
कपटी कीड़ी नेड़ न जाई।
गुरुजन गुरुमुख झोलीपाई॥५ ॥ रसिक० ॥
केशवानन्द कहे सुन मीता,
नाम मिठाई लावो चीता।
सत्संगतिके हाट बिकाई॥६ ॥ रसिक० ॥

धर्म-हेविचारदेवजी ! आप तो दयालु हैं, आपने तो जगत् की हालत देखी नहीं आपतक तो वही पुरुष पहुंचता है कि जो विवेक वैराग्यादिकोंसे पवित्र चित्त हो लेता है। मैंने जगतकी हालत खूब देखी है, उस को कहता हूँ सुनो, एक दिन मैं ब्राह्मण का रूप धर, गंगाजली हाथ में ले यात्रा करनेको चला। एक बाग़में बहुत उत्तम कोठी बनी है, फ़र्श, ग़लीचे बिछे हुए हैं, कुर्सी मेज़ लगी हैं, उनके ऊपर नई रोशनी

के अमीर लोग बैठे मदिरा पिए कुछ रौना गौनीसी कररहे हैं, मैं जाकर द्वारपर खड़ा हुआ, किसीने नहीं पूछा कि तू कौन है? कैसे खड़ा? तब मैंने खुदही कहा, बाबूसाहब की जयहोय! गंगाजल लीजिये। वह एकदम कहका मारकर हँसपड़े। एकबोला लोजी, नशा उतार भली सौगात आई है, अरे! दूरजा, कहाँसे आया है। दूसरा बोला, अरे भाई! गंगाजल है, थोड़ा२ लेलो। तीसरा कहने लगा, लो! यह खूबरहे जनाब नशा उतरगया तो एक बोतल ढाई रुपयेकी और लानी पड़ेगी। चौथा बोला, भाई! हमको तो मुवाफिक़ नहीं आता, सर्द बहुत होता है, तबियत खराब होजायगी। पांचवां बोला, अरे जा! क़ीमती मज़ेदार चीज़के सामने तेरी मुफ्तकी कौन लेगा और न जाने कहांसे भरलाया है। छटा बोला, अरे भाई! लो मत, मगर इस ब्राह्मणको कुछ आजनको तो दो। सातवाँ कहने लगा,

भाई वाह ! और तो और पर यह खूब कही जनाब, ब्राह्मणोंके खिलाने से क्या फ़ायदा हैं, खावें और जंगल फिर आवें। रंडीको खिलावें तो आँख तोभी सेकें। खानसामा हाथ जोड़कर बोला, महाराज पधारो, यहां आपकी दाल नहीं गलेगी मैं पिछले पैरों लौट आया। हेविचारदेवजी ! संसारकी ऐसी हालत है कि मुफ्त धर्मको एक पैसा भी नहीं और सट्टा, लाटरी के वास्ते लाखों रुपया, इत्यादि अनेक दुर्दशा संसारकी देखकर घबराके मैं गंगातट सन्तोंमें आपड़ा हूँ ।

(गाता है)

राग सोरठ ताल तीन।

केशव कौन सुनै तेरी बात,
मन मारग सब जात ॥ टेक ॥
मन मूरख भोगन में भटके,
नहिं पावत कुशलात ॥ १ ॥ केशव० ॥

जीभ अनर्थ व्यर्थ बहुभाषे,
हरिकीर्तिन नहिं गात ॥ २ ॥ केशव० ॥
कपटीकरण निन्दा रसराते,
हरिजन नाहिं सुहात ॥ ३ ॥ केशव० ॥
नैन कामिनीरूप निहारें,
संतदरश अघरात ॥ ४ ॥ केशव० ॥
कर अनर्थकर बहुधन संचै,
दान नाम सकुचात ॥ ५ ॥ केशव० ॥
चरणनिकार करणको धावै,
सन्तसभा अलसात ॥ ६ ॥ केशव० ॥
केशवानन्द इन्द्रिय कृतारथ,
जो हरिरस लपटात ॥ ७ ॥ केशव० ॥

विचार-धर्मवीरजी ! आपने गृहस्थियों की भली दशा सुनाई। ओ हो ! ऐसा समय वर्तमान होगया। अच्छा आप सन्तों में भी बहुत रहे हैं, सन्तोंकी भी दशा निरूपण करो।

धर्म-विचारदेवजी ! सन्तोंकी महिमा

अपार है कोई जान नहीं सकता। जो ईश्वर को जानता है सोई सन्तको पहिचानता है। और जो सन्तको पहिचानता है वही ईश्वर को जानता है। ईश्वर और सन्तमें भेदनहीं है (ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति) ब्रह्मका जानने वाला ब्रह्मही होता है। हां आपने जो पूछा है इससे कुछ कहता हूं। मैंने सन्त भी तीन प्रकारके देखे हैं-मुक्त, मुमुक्षु और बद्ध, जो ब्रह्मस्वरूप आत्मामें हर समय निमग्न रहते हैं, सर्वको ब्रह्मरूप देखतेहुए भेददृष्टिसे जो रहित हैं सो मुक्त हैं। और जो ऐसे सन्त गुरुओंकी सेवा में तत्पर और जगत्जालसे मनको निकाल, सत्-शास्त्रद्वारा ब्रह्मविचारमें लगे हैं सो मुमुक्षु हैं। और जो ग्राम धामको छोड़ मठ मढी में ममता करते हैं, स्त्री पुत्र को त्याग चेला चेली में आसक्त होते हैं और ब्राह्मण आदि वर्णको त्याग ब्रह्मचर्यादि आश्रम में अभिमान करते हैं सो बद्ध हैं।

ऐसे बहुत देखे हैं परन्तु सन्त कैसे भी हों नारायणरूप हैं। जैसे ईखके खेतमें खड़े हुए गन्नोंमेंसे कुछ गन्ने निकलकर रस हो कर पीनेके काममें आते हैं और उन्हीं में कुछ गन्ने गुड़ होकर भक्ष्य होजाते हैं और कुछ गन्ने गुडसे खांड़ होकर बरते जाते हैं, मिश्रीतक कोई विरलाही पहुंचता है। परन्तु खेतमें खड़े हुए गन्नोंमें से निकले हुए उत्तरके गन्ने सब उत्तमोत्तम हैं। इसीप्रकार संसार में स्थित गृहस्थों से निकलेहुए सन्त सर्वप्रकार उत्तम हैं। यद्यपि सिद्धि (मोक्ष) को कोई विरला ही प्राप्त होता है तथापि गृहस्थ-आश्रमके विक्षेपसे छूट ईश्वरके नामपर तो हैं सो धारणावाले एक सन्तके साथ सबको नारायणरूप मानना होता है और पूजा की जाती है। गढ़ी हुई अग्निको राख जानकर उसपर पैर न धरना चाहिये। सन्त कैसाभी हो उसके हृदयमें दयातो अवश्य रहती है।

और जहां दया है तहां धर्म्म है तहीं सन्तोष है। इसप्रकार धीरे२ सन्तोंकी समीपताके प्रभाव से सद्गुण स्वतः प्राप्त होते हैं। रूखा सूखा भोजन मिलनेपर परमात्मा को भोग लगा सन्त आत्मरक्षा करता है। कोई अपने आप भोजन न दे तो मधुकरी वृत्तिसे सन्तोषपूर्वक स्वतन्त्रताके साथ निर्वाह करता है। सन्तोंका गृहस्थियों के गृहमें जाना अन्नके निमित्तसे नहीं होता, गृहस्थआश्रमको पवित्र करनेके वास्ते है। और जिस गृह में सन्त भोजन करता है सो नारायण ही तृप्त होता है। इसकारण सन्तकी तृप्ति सर्व जगत्की तृप्ति है। सन्त को ईश्वररूप जानके सेवा करनेवाले सेवक को सर्वसुख सम्पत्तिरूप मनवांछितफलकी प्राप्ति होती है। और जो सन्तकी निन्दा करता है सो इस लोकमें दुःखभोग, मरकर नरकगामी होता है; क्योंकि लोगोंको उपदेशादि पुण्यरूप कर्म सन्तोंसे सहज स्व-

भाव होता है और चलने फिरनेसे जीव-हिंसा आदि पापरूप कर्म भी सहज स्वभाव ही होता है। सन्तको तो कर्म्मफल की इच्छा नहीं, इसवास्ते पुण्यरूप कर्म सेवा करनेवालेको प्राप्त होता है और पापरूप कर्म्मको निन्दा करनेवाला लेजाता है और सन्त निर्लेप होकर मोक्षको प्राप्त होता है। क्योंकि आगामी कर्म्म तो इन दोनोंने लेलिये, संचित कर्म ज्ञानरूप अग्निसे नाश होगये और प्रारब्धकर्म्म शरीर भोगता है, सन्त निर्लेप हैं। प्रायः सन्तोंका प्रारब्ध निवृत्तिका ही होता है। प्रारब्धभोगके अनन्तर विदेह केवल मोक्ष को प्राप्त होता है। इस कारण सन्तोंकी निन्दा करनेसे लाभ कदापि नहीं होता, इसलिये सेवा करना ही योग्य है। हे विचारदेवजी! मैं सन्तोंको नारायणरूप जानकर इनमें निवास करता हूँ। शारीरिक

यात्राभी इनमें रहनेसे निर्विक्षेप होती है। सिद्ध (बनाबनाया) अन्न भिक्षा करनेको मिलता है, खटपटका कुछ काम नहीं। और बेफिकरी नगरीमें ठंडीछाया सोनेको मिलती है। भिक्षा करो, तान डुपट्टा सोवो, न कोई पूछै, न बुलावै, क्योंकि सन्तोंका स्वाभाविक धर्म्मही निवृत्ति है। इसकारण सहज स्वभाव ही ध्यान धारणामें लगे रहते हैं, इससे अधिक सुख कहां होगा। और जो मैं धनी पुरुषोंमें रहता हूं सो मुझे बहुत हैरान करते हैं। कोई मन्दिर, धर्म्मशाला, बनाता, कोई बाग़ लगाता है। कोई तालाब, कूप, बावड़ी खुदवाता और कोई अन्नसत्र चलाता है। इसप्रकार मुझे हरएक जगह भटकना पड़ता है। यदि मैं परोपकारार्थ कष्टभी सहलूं, फिरभी मेरे ऊपर ऐसा बोझा लादते हैं कि जिससे मैं निहायत श्रम पाता हूं। जो पुरुष

मन्दिर बनवाता है सो कामनासहित अपने सुखभोगके निमित्त करता है और कहता यह है कि मैंने धर्मार्थ किया है। लेकिन धर्मार्थ वह होता है जो निष्काम हो, और वही अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा मोक्षका हेतु है। और सकामकर्म तौ यहीं तुच्छफल देकर नाश होजाता है। हेविचारदेवजी ! इसप्रकार संसारको ग़फ़लतमें पड़ा देखकर मैं सन्तोंमें निवास करता हूं।

विचार-हे धर्मवीरजी ! आपका विचार अत्युत्तम है। और आप प्रवृत्ति, निवृत्ति जिस स्थानमें भी रहते हैं सोई शोभनीय हो पूजनीय होता है।

जगत्कुमार-हे सद्गुरु विचारदेवजी ! आपने मेरे ऊपर परमअनुग्रह किया। आपके प्रतापसे महानुभावोंके अमृतरूप वचन श्रवणोंद्वारा अन्दर जाकर मेरे

आत्माको हरा भरा कररहे हैं। हाय! आज तक मैंने अपनी आयु दुराचारी पुरुषोंके संग वृथाही खोई। परन्तु श्रीमती माता अमीरी देवीके पुण्यप्रतापसे संतोंके दर्शन होकर यह लाभ हुआ। अब मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि मेरा चित्त सब ओरसे उपराम होकर आप (ब्रह्मविचार) में तत्पर हुआ है इसकारण मुझेभी संन्यस्त-आश्रम धारण कराओ।

सत्संग-कुँवरसाहब! इस बातको खूब समझ लीजिये, यह ७२ बटनोंके कोट, पतलून उतार लँगोटी लगानी पड़ेगी। उस में पानकी डिब्बीके वास्ते जेब तक न होगी। और होटलकीचाय, डबलरोटीके बदले दर २ भीख मांगनी पड़ेगी। वही आपके मुँह चाटने वाले कुत्ते काटनेको दौड़ेंगे और बूटोंके बदले ठूठोंसे काम पड़ेगा। धन्य है आपको, अबभी खूब सोचो।

जगत्कुमार-(बड़ी गंभीरता और सभ्यताके साथ) भाई ! ठट्टा क्यों करते हो। इस अनुपम नरदेहको पाकर पुरुष क्या नहीं करसकता। यह कोई अचम्भेकी बात नहीं है, जब जैसा संग था तब तैसी ही रुचि और दशाथी। अब आप (सत्संग) की कृपासे ऐसीही रुचि है सोई दशाभी होनी चाहिये।

विचार-हे जगत्कुमार ! आप अब अमीर हुए हैं। अमीर उसको कहते हैं जिसका चित्त सर्वप्रकार तृप्त हो, सभ्यता आदि गुणोंका पात्र हुआ हो। परन्तु संन्यस्त आश्रम धारनेका जो आप कहते हैं सो इसमें मेरी सम्मति नहीं है क्योंकि जो सच्चा अमीर है वहीपूरा फ़क़ीरभी है। और श्मशानभूमि के वैराग्यवत् सत्संगमें भी वैराग्य होता है सो इसकारण वैराग्य स्थिर नहीं रहता, ऐसे समयपर आश्रम

बदलनेके पीछे पश्चात्ताप करना पड़ता है और बहुतसे तो लौटकर गृहस्थआश्रममें मिलते देखे हैं।

जगतकुमार–(गाताहुआ)

(राग आसा ताल चंचल)

सतगुरु मैं तेरा इक दास।
तोहि दर्शकी पिआस ॥ १ ॥ सतगुरु० ॥
तात मात सुत बन्धू त्यागे।
तुमपै कियो विश्वास ॥ २ ॥ सतगुरु० ॥
भवसागर यह दुखसागर है।
सुखसागर प्रभु खास ॥ ३ ॥ सतगुरु० ॥
दाम चाम पुन ग्राम न जांचों।
जांचों चरण निवास ॥ ४ ॥ सतगुरु० ॥
केशवानन्द आनन्दचरण रज।
दीजै नानक दास ॥ ५ ॥ सतगुरु० ॥

(गिड़गिड़ाकर) हे कृपानाथ ! जिस-प्रकार प्रेमसे आपने मेरे सिरपर हाथ रक्खा है उसीप्रकार निर्वाह कीजिये।

कारण वैराग्यसे ही तीव्र वैराग्य भर्तृहरि आदिकी भांति होजाता है। मेरी यह हठ न समझिये, मैं दृढ़संकल्पसे कहता हूँ कि-संन्यासआश्रम अवश्य धारण करूंगा और श्रीमान्‌की कृपासे पार उतरूंगा।

विचार-हेकुमार! यह तो मैं अनुभव किये हुए हूं कि जो पुरुष दृढ़ विचारवान् होता है सो पुरुष प्रमादमें प्रवृत्त हो तौ भी पूरा करता है। और जो प्रमाद से हटकर, परमार्थ में तत्पर होता है तौ भी पूर्णही करता है। मैं यह तो भली भांति जानता हूँ कि आपका चित्त सर्व ओरसे उपराम है परन्तु मैं तुमको संन्यास-आश्रम कौनसे सन्तसे धारण कराऊं, जो सन्त विरक्त महात्मा भिक्षा भोजन करके एकान्त में रहने वाले हैं सो तो शिष्य करते ही नहीं। और जो महन्त हैं सो मठ, मकान, ग्राम, ज़मीदारीके झगड़ों में लगे रहते हैं। उनमें तो तुम्हारी

श्रद्धा ही न होगी। और जो विद्वान् मंडली जमायत वाले हैं उनको गृहस्थियों से भी अधिक चिन्ता होती है, क्योंकि गृहस्थआश्रम में जितने भी पुरुष होते हैं करीब २ थोड़ा बहुत सबही कमाते हैं और मंडलीमें जो मूर्ती रहती हैं उनके योग क्षेमका सर्व भार मंडलीके स्वामी पर ही होता है इस कारण सर्व देश देशान्तर उनको डोलना पड़ता है।एक देश में सर्वका पालन कठिन है और उनके पालनके निमित्त द्रव्य संग्रह करना ही पड़ताहै। और वैसे मंडली जमातोंके फिरनेसे जगत्में उपकारभी बहुत होता है। शहर शहर, ग्राम ग्राममें, कथा वार्ता सत्संग होता है। गृहस्थी लोग सन्तोंकी सेवाकर, धनको सार्थक करते हैं। परन्तु मंडली जमायतके महन्त सन्तको गंभीरआशय जती सती होना योग्य है, लोभ भ्रममें फंसना उचित

नहीं। और योग्य २ साधु समीप रखकर सदैव ब्रह्मविचार करते रहना चाहिये और इसी आशयसे विद्वानोंने मण्डलियों की मर्य्यादा चलाई है। परन्तु आजकल लोग इस उत्तम श्रेणीको व्यवहार समझ बैठे हैं। जबकि मंडली जमात वाले विद्वान मठधारी महन्तोंकी यह दशा है और विरक्त कोई सुलभ नहीं, तो फिर आपको किसका शिष्य कराऊं। हेजगत्कुमार ! धन-अमीरी पिता-माता सहित बाबा धर्म्मकी सेवा करो। और यदि धैर्य का आश्रय लो, सदाचारसे रहो तोगृह मेंही संन्यास है। संन्यस्त आश्रममें मैदानकी लड़ाई है और गृहस्थाश्रममें किलोंकी लड़ाई है।

जगत्कुमार-हे भगवन् ! यद्यपि धन-अमीरी मेरे पिता-माता पूजनेके योग्य हैं तथापि अब इनका संग करनेकी मेरी रुचि नहीं है क्योंकि धन की समीपतासे अहं-

कार तो प्रथम ही होता है कि मैं धनी हूँ, मेरे समान कौन है? और साथही साथ लोभभीतौलौलगाये रहता है एकके दो,दोके दस, सौ, हजार, लाख, करोड़, करलूं और इसके प्रभाव से काम क्रोधादिक सब घेरते हैं, इसीप्रकार धीरे २ होते २ मैं सब दुर्दशा भोग चुकाहू फिर भला इस धन अमीरीमें मेरी कैसे रुचि हो। ऐसे माता पिताको दूरसे ही नमस्कार करना उचित है। और मंडली जमातों वाले विद्वानों की प्रवृत्ति और देशाटन परोपकार के लिये है और विरक्त अवधूत आदिभी उनकी ही शाखा हैं ऐसे महान् वृक्ष को आश्रय करने की मेरी रुचि हैं, किसीके हटाने से हटेगी नहीं।

विचार-हेकुमार! धनका तो यह स्वभाव है कि जिधर लगाओ उधरही लगता है। रजोगुणी पुरुष प्राप्त धनको रजोगुण में लगाते हैं तिसका फल "बन्ध" होता है।

और सतोगुणी पुरुष प्राप्त हुए धनको परमार्थमें लगाते हैं। उसका फल "मोक्ष" होता है। जैसे नदीमें जल ऊपरसे आ, नीचेको बिना रुकावट दिनरात बहता हुआ सदा निर्मल रहता है इसीप्रकार जैसे जो धन आवे उसको परमार्थमें लगाता रहे। रुकनेपर लोभादिकी उत्पत्ति द्वारा चित्तको मलिन करता है।

जगत्कु०-भगवन्! चाहे सो होय, अब मेरेको तो धनादिकोंके संगकी इच्छा नहीं है।

अमीरी-(जगत्कुमारकी दशा देख) हे बहिन फ़क़ीरी! साधु तीर्थयात्रा करने क्यों जाते हैं? क्या उनका चित्त मलिन है जो उसको शुद्ध करने जाते हैं? या कोई और कारण है? क्योंकि-मार्गमें क्षुधा, पिपासा, शीतोष्णादि से उत्पन्न हुआ दुःख सहना पड़ता है। यात्रामें नवीन

स्थानादिके प्रबन्धसे विक्षिप्त हो मन शांति
नहीं पाता। शरीरकी कान्ति नहीं रहती,
क्योंकि--हरिद्वार--प्रयाग--आदि कुम्भोंमें
साधुओंको बड़ा दुःख पाते देखते हैं और
पर्वके दिन साधु शाही ठाठसे हाथियोंपर
निशान झंडे निकालते हैं। कोतल घोड़े,
ज़रीके जड़ाऊ साजसे सजा, चाँदी सोने
की चोब, बल्लम, पकड़कर साधु चलते हैं
इसीप्रकार राजसी ठाठ गृहस्थोंको दिखाने
के वास्ते भागे २ फिरते दुःख पाते हैं।
हज़ारों साधु इकट्ठे हो लैन बांधकर फौज
की भांति निकलते हुए नानाप्रकारके
खेल करते जाते हैं और मत पंथवालोंमें
एक दूसरेसे उपद्रव होजानेके भयसे सर्कार-
को बड़ा प्रबन्ध करना पड़ता है। महन्त-
लोग हीरोंसे जड़ाऊ टोप धारके सजावट
के साथ लाख २ रुपयेके सामानकी
तयारीके हाथीपर सवारहो निकलते हैं।

भला सन्तोंको इस उपद्रवसे क्या, नामतो धरा है फ़क़ीर और नक़ल अमीरोंकी करते हैं। उस समय अच्छा समझनेके बदले हंसी आती है कि-उदासी संन्यासी वेषमें कहाकर बनावटी राजसीलीला दिखाते हैं और जो किसी अमीरका बालक पहुंच जावै तो फुसलाकर वेष-धारण करा अपनासा बनालेते हैं।

फ़क़ीरी-हेबहिन! तुम्हारा यह प्रश्न विचारसहित नहीं है किन्तु जगतकुमार के वैराग्यअंकुर उत्पन्न हुआ देख सन्तोंके ग्लानि दिलानेके वास्ते है, सो चन्द्रमापर आक्षेप करनेसे अपनेही ऊपर पड़ता है।

यदि सन्त तीर्थोंमें न जावें तो गृहस्थों को उनका दर्शन कैसे मिले। जो कोईभी गृहस्थ तीर्थोंमें जाता है उसका पहला प्रश्न यही होता है कि-यहां कोई सन्त है, उस के दर्शन करने जावें। चाहें स्वर्ग से देवता

भी आकर विराजमान हों परन्तु विना सन्तमण्डली के पधारे तीर्थकी शोभा नहीं होती। गृहस्थलोग तीर्थोंमें जाकर सन्तोंको भोजनादि अर्पणकर यात्रा सफल समझते हैं सो विना सन्तसमागमके कैसे होसकता है। बल्कि सन्तोंके चरण पड़े विना तीर्थोंकी भूमि भी तो पवित्र नहीं होती।

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थीभूताहि साधवः।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तस्थेन गदाभृता॥

साधुओंके दर्शनोंसे ही पुण्य होता है साधु तीर्थ (पवित्र) रूप ही है। गदाधर भगवानको हृदय में धारण करनेसे साधु तीर्थोंको भी तीर्थ करते हैं और अपने उपदेश व्याख्यानादिकों से भगवान् तथा तीर्थोंकी महिमाका प्रतिपादनकर यात्रियों की श्रद्धा बढ़ातेहुए यात्रा सफल करते हैं। यदि साधु तीर्थोंपर जाकर उपदेश न करें तो कोईभी यात्रा करने न जावें। और

मार्गमें जातेहुए उपदेशद्वारा जगत्का सुधार करते हैं-इत्यादि परोपकारोंको विचार सन्त तीर्थयात्रामें उपस्थित हुए भ्रमको नहीं समझते; क्योंकि-तितिक्षा तो सन्तोंका भूषण ही है। हे अमीरी! यह जो तुमने कहा कि-कुम्भोंके मेले में हाथी घोड़े सजाकर साधु शाही ठाटसे निकलते हैं। परन्तु साधुलोग उस शाही ठाट, को अपने २ इष्टदेवकी अर्दलीमें ले जाते हैं। आपने देखा होगा कि हर एक मतवाली जमाअतके आगे२ अपने२ इष्ट-देवकी पालकी अवश्य होती है और लड़ाई फ़साद कुछ नहीं होता। केवल इतना ही होता है कि-एक जमाअत कहती है कि-हम अपने इष्टदेवको गंगामें पहले स्नान करावेंगे, दूसरी जमाअत कहती है कि-नहीं, पहले हम स्नान करावेंगे, सिवाय इस प्रकारकी बातोंके और किसी क़िस्म

का बखेड़ा नहीं होता। तिस पर भी जमाअतोंके स्नानका समय नियत होरहा है, उसमें कुछभी बखेड़ा नहीं होता। अपने अपने इष्टदेवकी बड़ाई सब चाहते हैं और नंगे पैरों अर्दलीमें श्रद्धासे सब जाते हैं। यह तुम्हारा कोई प्रश्न और शंका नहीं है, केवल कुतर्कमात्र है। सो ऐसी कुतर्कोंसे सन्त दूषित नहीं होसकते बल्कि उनका यह यश देश-देशान्तरोंमें प्रसिद्ध है कि-कुम्भोंके मेलोंपर अखाड़ेवाले नित्यप्रति हज़ारों साधुओंको भोजन देते हैं, और वही लोग अपनी जमाअतकी शोभाके वास्ते प्रतिष्ठित२पुरुषोंको हीरोंसे जड़े हुए टोप पहनाकर अपने २ हाथियोंपर सवार कराकर लेजाते हैं। और बहुतसे विरक्त सन्त मत-पंथके मानसे रहित, सबसे पृथक् रहते हैं, उनको तो इन बखेड़ोंसेभी कुछ प्रयोजन नहीं। और सर्कारी अफ़सर

लोग इस वास्ते घबड़ाते हैं कि-हमारे प्रबन्धमें किसीप्रकारकी न्यूनता होनेपर बदनामी होगी-और हमारा दर्जा टूट जायगा। परन्तु तू अमीरी परदों में रहने वाली नारी सन्तोंके दर्शन करने कथा जाने कहीं दूरसे बाजे गाजे सुनलिये होंगे। जटा-धारी-तप-स्वी-परमहंस-विरक्त-दिगम्बर-अवधूतोंके दर्शन तुमको होने दुर्लभ हैं। और पंडित साधु कि जिनके उपदेश से जगत् के धर्मका कारोबार सब चलता है-उनको भी तू नहीं जानती। वहांतक पहुंचही कैसे सकती है। जब तेरी समझने योग्य बुद्धि हुई तब धनके साथ सम्बन्ध-होकर भागसीमें जापड़ी। तुम्हारे पहुंचतेही पतिने द्वारपर पहरा बैठा दिया कि-महलोंमें अमीरी आगई है, अब अन्दर कोई साधु ब्राह्मण न आने पावै तौ फिर आपको सन्तोंके दर्शन कहां से होते।

अमीरी-हे बहिन फ़क़ीरी ! मैं किसी आक्षेपसे नहीं पूछती बल्कि अपनी शङ्का निवारण करती हूँ, क्रोध न करना। आपने देखाही होगा कि-डाकू, ठग, चोर, साधुओंका वेष धारण करके जगत्को लूटते हैं और राजाकोभी साधुओंसे कुछ लाभ नहीं होता, क्योंकि-वह खुदही भिक्षा मांगकर खाते हुवे देशदेशान्तरमें फिर, वृथा समय खोते हैं।

फ़क़ीरी-हेबहिन अमीरी। जो ठग चोर साधुके वेष में हो लूटते हैं इसमें साधुओं का क्या दोष है। बनावटी चीजसे असली चीज दूषित नहीं होसकती।जैसे यह प्रसिद्ध है कि काशीजी में ठगलोग सेठ राजा आदि अमीरोंका स्वांग धारणकर गृहस्थियों के सिवाय सन्तोंको भी लूटते हैं, इस से अमीर भी दूषित होने चाहिये। सो ठगोंके दोषसे न साधु दूषित हों, न अमीर और जो तुमने यह कहा कि राजाको इनसे

कुछ लाभ नहीं होता सो राजाको बहुतलाभ है। जिन चोरी, जूआ और व्यभिचारादि दोषोंके दूर करनेके निमित्त राजा लाखों रुपया खर्च करतेहैं परन्तु पुलिस जेलखानेके पूर्ण प्रबन्ध होनेपरभी दोष दूर नहीं होते। और सन्तों के उपदेशसे ही लोग स्वतः दोषोंको त्याग सदाचारी होते हैं। इतना बड़ा राजाके साथ उपकार करके भी राजा से सन्त कुछ मांगते नहीं, बल्कि भिक्षा-वृत्ति से निर्वाह करते हैं और कुमार्गी राजोंकोभी उपदेश करके सुमार्गमें चलाते हैं। इस प्रकार राजा प्रजा सबके सुधार करनेवाले सन्त परोपकारी हैं।

तरुवर सरवर सन्तजन, चौथे बरसे मेह।
परकारजके कारने, चारों धारें देह॥

जैसे अमीरोंका वेष धारण करके स्वार्थी लोग फिरते हैं तैसे ही फ़क़ीरोंका वेष धारण करके पेटू पाखंडी लोग भी फिरते

हैं। मेरे विचार से तो उन पाखंडियोंने कलि-युगी अमीरोंसे शिक्षा पाई हो तो आश्चर्य नहीं। क्योंकि आज कलके अमीर सामन के गिरगिटके समान कई रंग बदलते हैं और क्षण २ में तोला माशा होना तो मामूली बात है। हम किसीका पक्ष नहीं करते निष्कपट सदाचारीको अच्छा समझते हैं। जो अमीर होकर फ़क़ीरोंके गुणोंको धारण करते हैं उनको अमीर फ़क़ीर सबलोग पगड़ीवाले साधु कहते हैं।

अमीरी-हे बहिन! बुरा मत मानना। यदि पगड़ी बांधे हुए साधु होसकता है तौ फिर काषाय वस्त्र दंड कमंडलु धारण करनेकी क्या आवश्यकता है?

फ़क़ीरी-हे अमीरी! परमार्थसिद्धि तो फ़क़ीरोंके गुण धारण करनेसे ही होती है परंतु व्यावहारिक सिद्धि वेष धारण करने

से ही होती है। जैसे पुलिस की चपरास धारण कियेबिना साधारण वस्त्रोंवाले सिपाही से चोर ज्वारी नहीं डरते इसी प्रकार सन्तोंका वेष धारण किये विना लोगोंपर उपदेश का असर नहीं होता ! हे बाहिन अमीरी ! और जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो सो पूछलो, मनुष्यदेह वार २ नहीं मिलता, तिस परभी सन्तोंका सत्संग दुर्लभ है।

अमीरी-हे मेरी प्यारी बहिन ! अब मैं आपको अधिक श्रम देना योग्य नहीं समझती। केवल इतना ही पूछती हूं कि आपका मत क्या है ?

फ़क़ीरी-हे अमीरी ! हमारा कोई मत नहीं और न हमको किसी मत मतान्तर से प्रयोजन है संसारमें जितने मत हैं सब के गुरु फ़क़ीर ही हैं। और उनके जो २ पुरुष दर्शन करते हैं सो द्वितीयाके चन्द्रवत्

मंगलरूप जानकर नमस्कार करते हैं। अमीर और फ़क़ीर सब मतोंमें होते हैं परन्तु जिस पुरुष में विज्ञानदेवका प्रकाश (अक्ल) है उस में ही अमीरी फ़क़ीरी का निवास सार्थक होता है और अक़ल से ही फ़क़ीरीअमीरी शोभती हैं। हमारा (फ़क़ीरीका) पद बहुत ऊंचा है। वहांतक मतमतान्तरका शब्दभी नहीं पहुंच सकता क्योंकि यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है:-

"फकीरीका घर दूर, जैसे बड़ी खजूर।
चढ़े तो चाखै प्रेमरस, गिरे तो चकनाचूर॥

हमारे यहां मज़हब ग़ज़बका झगड़ा और वर्णआश्रमका भी बखेडा नहीं है। जो पुरुष मतमतान्तरकी फांसी में नहीं फंसे और न दूसरोंको उलझाते हैं सोई पुरुष हमारा सत्यरूप फल चाखते हैं। योगी योगाभ्यासकरके अपनेको योगी मानते हैं भोगी विषयभोग करके भोगी

जानते हैं। और रागी संसारमें राग करते हैं। त्यागी घरको त्यागकर वनमें निवास करनेको ही त्याग समझते हैं। योगियों को योगकी, भोगियोंको भोगकी, रागियों को रागकी और त्यागियोंको त्यागकी ममताका रोग लगा हुआ है। और हमको रोग, भोग, राग, त्यागकी ममताके रोग का शोक नहीं है। किसी कालमें फकीर राजा प्रजाके प्रेमसे हाथी, बग्घियोंपर सवार होते हैं और किसीकालमें नंगे पैरों ठूंठोंमें फिरते हैं। औरभी-

कचिद्भूमौ शय्या कचिदपि च पर्य्यंकशयनं,
कचित् शाकाहारी क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः॥
कचित् कन्थाधारी कचिदपि च दिव्याम्बरधरो-
मनस्वी मोक्षार्थीः गणयति न दुःखं न च सुखम ॥

कभी भूमिकी शय्यापर शयन करता है, कभी पलंगके ऊपर विश्राम करता है, कभी शाकका अहार करता है, कभी उत्तम बासमती चावलोंका भोजन पाता है

कभी फटी टूटी गुदरी ओढ लेता है, कभी रेशमी पशमीनेके उत्तम २ पाट पाटाम्बर धारण करता है, मोक्षार्थी फ़क़ीर दुःख सुख को नहीं गिनता। किसी अवस्थामें भी फ़क़ीर हर्ष शोकको नहीं प्राप्त होता। तीनों गुणोंका व्यवहाररूप नृत्यकारी हमारे सन्मुख होता है। हम साक्षीरूप होकर देखते हैं। हमारा वशीकरण मंत्र किसीके पास नहीं है, हम सर्वतंत्र स्वतंत्र हैं। हे अमीरी ! फ़क़ीरी की लीला अपार है। किसीकालमें बैठकर हम सभा लगा व्याख्यान करते हैं, किसी काल में मौनहो एकान्तमें बैठ योग करते हैं, किसीकालमें अद्भुतखेल खेलते हैं, किसी कालमें दानाई की बातें करते हैं जैसे परमात्मादेव अलख है तैसे हमाराभी भेद कोई नहीं पासकता, हमभी अलख हैं।

अमीरी-(फ़क़ीरीके चरणों में गिरकर) हे बहिन फ़क़ीरी ! तुमको धन्य है ! तुम बड़भागिनी हो।

(दोनों गले लगकर मिलती हैं)

फकीरी-(प्रेमसे) हे बहिन अमीरी ! एक वार्ता मैं तुमको स्वयं सुनाती हूँ, तुम सुनो। फ़क़ीर, अमीर दो प्रकारके होते हैं। एक अमीर फ़क़ीर होते हैं और एक फ़क़ीर अमीर होते हैं। जिनके शुभ सन्तान है, धर्म्म कर्म यथायोग्य चलता है और गृहके लोगभी कुमार्गी नहीं, स्त्री पुत्र अपने अनुसारी हैं, सेवकगण बुद्धिमान् आज्ञानुयायी हैं, रहनेका स्थान अपना स्वतन्त्र है, नारी मृदुभाषिणी पतिव्रता है, मित्र कपटी नहीं, अतिथिका यथायोग्य सत्कार होता है, दीनों पर दया और परसम्पत्ति देख सन्तुष्टहो जतसतसे रहता है, सत्संग विचारमें प्रीति है, हानि-लाभमें हर्ष, शोक नहीं मानता लोक परलोकमें निन्दाकारक कर्म नहीं करता, मनमें भक्ति, मुखसे ज्ञानरूपी

मोती उगलता है, व्यवहारको इन्द्रजाल वत् मिथ्या जान ग्लानि करता है, तिस-को अमीर फ़क़ीर कहते हैं। ऐसे अमीर फ़क़ीर राजा जनकादिक बहुतसे हुए हैं। इसप्रकारके व्यावहारिक, पारमार्थिक सुख-साधनोंको त्यागकर जीव पुरुषमें जानेकी इच्छा करता है वह पागल है। यदि व्यवहारसे अत्यन्तही ग्लानि हो तो भले ही त्यागकर वनको चला जावे, कोई हानिभी नहीं है। जैसे ज्ञानी याज्ञवल्क्य मुनिने गृहको त्यागकर, संन्यासी हो, प्रवृत्ति के विक्षेपाभासको भी निवारण कर मन को निर्वाणपदमें निमग्न किया है। उत्कट वैराग्यवान् पुरुष इसीप्रकार करे। और जो फ़क़ीर वन-नगरको समान देखता है, वनमें हर्ष, नगरमें शोक नहीं करता हुआ जैसे अकेला विचरता है तैसेही लाखोंमें डोलता है। जिसके चित्तमें स्त्री-पुरुषका भेदरूप विकार नहीं होता और राज-

सिंहासन तथा कंकड़ोंकी भूमिको समान स-मझता है। भक्तोंकी पहराई हुई चन्दन-फूल माला, तथा मूर्खोंके डालेहुए थूक-मूत्रादिकोंको समान समझकर किसीको वर, शाप नहीं देता, सर्वको आत्मारूप देखता है। कोई पुरुष किसी पदार्थको लेजावै अथवा लेजावै-हानि, लाभ नहीं समझता। विधिनिषेधसे रहित होकर अपनी रुचि अनुसार सदुपदेशद्वारा जगत्‌का सुधार करता है। कभी मौनहो एकान्तमें बैठ रहता है और भाईचारेकी सेवा शुश्रूषामें कटिबद्ध नहीं होता। सत्शास्त्रके विचारमें समयको व्यतीत करता है। भोग शोकका रोग जिसको नहीं है मृगतृष्णाके जलवत जगत्‌को मिथ्या जानता हुआ आनन्द-स्वरूप आत्मामें निमग्न हो कभी हंसता, कभी रोता, कभी चिल्लाता इत्यादिक पागलोंकी समान चेष्टा करता है अथवा—

एवं व्रता स्वप्रियनाम कीर्त्यां,
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।

हसत्यथो रोदति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकवाह्यः ॥

इस प्रकार अपने परम प्यारे आत्म-स्वरूप परमात्मा का नामकीर्त्तन कर, अनुराग के उत्पन्न होने से द्रुतचित्त होकर कभी ऊंचे स्वर से हंसता है, कभी रोता है, और कभी चिल्लाता है, लोक वाह्य-दृष्टि से रहित पागलों के समान चेष्टा करता है, वास्तव में विद्वान् है किन्तु लोग पागल समझते हैं, क्योंकि ज्ञानीकी लीला स्वसंवेद्य है। जीवन्मुक्ति को प्राप्त भगवान् ऋषभदेव, शुकदेव स्वामी, दत्तात्रेय, अवधूत, जड़भरत, यह सब फ़क़ीर अमीर हुए हैं। और वर्त्तमानकाल में भी फ़क़ीर अमीर हैं। हे बहिन ! तुमको भी सद्गुरुदेवकी कृपा से ज्ञाननेत्र प्राप्त हुए हैं, तो स्वयमेव देखलो।

विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः।

विमूढ़ पुरुष नहीं देख सक्ते, ज्ञानचक्षुओं वाले ही देखते हैं।

अमीरी-(चरणोंमें शिरधर) हेबहिन फकीरी! तुम्हारा परमपुनीत स्वरूप जानने और प्राप्त होने योग्य है ।

(दोनों परस्पर कंठलगकर मिलती हैं)

धन-(मनहीमन) जगत्कुमार सन्यासी होनेको उद्यत है। अमीरी पर फ़क़ीरी का रंग चढ़ही गया है। बस रहगये ठंनठंन पाल मदनगुपाल।(प्रकट) हेबेटा जगत्-कुमार! अब सन्तोंका सत्संग करतेहुए बहुत समय व्यतीत होचुका और पूज्य-पाद पिता (धर्म्मदेव) जीकी भी प्राप्ति होगई है और राज्यका भार मंत्रियोंपर सौंप आये थे वहां शीघ्रतासे पहुंचना ही आवश्यक है इसकारण सन्तोंसे चलने की आज्ञा मांगो।

जगत्कुमार-पिताजी! अब मेरी रुचि वहां जानेकी नहीं है। मैं तो यहां गंगातट तपोवन ही में रहूंगा!

धन-(घबड़ाकर) नहीं नहीं बेटा! ऐसा विचार मत करो। अभी तुम बालकहो।

अबतक तो खेलकूदके ही समय व्यतीत किया है, राज्यसुख कुछ नहीं देखा। अब यहांसे चल तुमको राज्याभिषेक करके हम एकान्तमें गंगातट भगवत्‌भजन करेंगे।भजन करनेका समय हमारा है तुम्हारा नहीं।

जगत्‌कुमार-(गाताहुआ)

रागआसावरी।

राजन काहेलोभ लगावे।
दुनियां संग न जावे ॥ टेक ॥
धन संतोष मोहि गुरुदीना।
शान्त मोर मन जिमि जलमीना।
भिक्षामात्र अघावैं ॥ १ ॥ राजन०
तुमजो राजन भोगो भोगा।
देख विचार दीर्घ यह रोगा।
मन नहिं शान्तीपावे ॥ २ ॥ राजन०
दया धर्म्म तव मन नहिं आना।
करि जुरमाना भरै ख़ज़ाना ॥
मारकूट धन लावैं ॥ ३ ॥ राजन०
अपनेमहल बनावें सुन्दर।

रागी कुवर सजावें मन्दिर ।
धर्म्मशास्त्र को ढ़ावें ॥ ४ ॥ राजन०
कामिनी गीत करे तव आगे ।
रसिक गीत सुनि सोवत जागे ।
हरिकीर्तन नहिंगावे ॥ ५ ॥ राजन०
मन मायाका हो जब हाना ।
मदिरा पी बैठेमस्ताना ।
झूठे सोचे दावें ॥ ६ ॥ धाजन०
जाकी चारों कुंट जगीरा ।
सोई जगत् मैं बड़ा अमीरा ।
फिरे फ़क़ीर वेदावें ॥ ७ ॥ राजन०
केशवानन्द फ़कीरी मस्ती ।
कार्यों कौड़ी दुनियां सस्ती ।
बे फिकरी सुखपावें ॥ राजन०

विचार-हे जगत्कुमार ! ऐसा विचार मत करो हमारा कहना मानो। जिस तरह से हम कहैं तैसा करो।

जगत्कुमार-श्रीमान् जो आज्ञा दें वही करूंगा।

विचारदेव-अब हम तुम सब चलें, श्रीमद्विज्ञानदेवजीके दर्शन करें कि-जिन की कृपासे परमानन्द होरहा है।

(सबका प्रस्थान)

सप्तमाङ्क

द्वितीय-गर्भाङ्क

(स्थान विज्ञानदेवका मन्दिर)

(लीलादेवीसहित विज्ञानदेव विराजमान हैं)

(विचारआदिकोंका प्रवेश)

सब-(गातेहुए)

(राग बिहाग)

आए मैं ब्रह्मानन्द मैंनूं वेद गांवदा,
सखियो न भरम भूलो वेला हाथ न आंवदा॥
मैं रहित पंचकोश तिनका साक्षिरूप हूँ।
न आदि अन्त मध्य मेरा मैं अनूप हूँ॥
मन बुद्धिका अदृष्ट प्यारा दृष्टिआंवदा १ आ०
प्यारेको खोजने गई मैं आप वो भई।

तन मनमें मेरे जो रमगया ज्यूं दूधमें दही॥
जो ईश जीव जगत खेलकर दिखावदा२मा०
तिलोंमें जैसे तेल है महँदी में रंग है।
त्यों सर्वमें व्यापक माए मेरे संग है॥
जिधरमैं देखूं सखियेमैंनूनज़र आंवदा३मा०
जावे तू ढूंढने जिसे बद्री दुआरका।
देहीमें उसका धाम उद्यम कर विचारका॥
जो जन्म जरा मरणमें कदी न आंवदा४मा०
कहते हैं केशवानन्द सुनो सजन लोको।
मैं ब्रह्मानन्द मगन किसका भजन मोको॥
दिनरात मैनु सर्व ब्रह्म दृष्ट आंवदा५मा०

विज्ञानदेव-आइये विराजिये।

(प्रणाम करकरके यथोचित आसनोंपर बैठते हैं)

लीलादेवी-बेटी अमीरी! अब तो तुम्हारा चित्त प्रसन्न और मुखपर कान्ति दीखती है। तुम्हारे सबके हरे भरे आत्मा देखकर मेरे मनको परम शान्ति होती है।

अमीरी-माताजी! जगत्की ख्वारीरूप हत्या हमारे ऊपर छारही थी, सो भग-

वान् विचारदेवके प्रतापसे तपोवनमें जा, सन्तोंके दर्शन सत्संगकर, सीतप्रसादके पातेही जगत्की ख्वारी हमको प्राणसंकट देनहारी, अपनीही क्रोधरूप अग्निसे जलकर भस्म होगई।

लीला-(फूली अंग नहीं समाती है) क्या ख्वारी जलकर भस्म होगई,सच है?

सत्संग-(जगतकुमारकी ओर देखकर) माताजी उसकी तो भस्मभी नहीं रही, जो जोगी होते तो रमाते तो सही।

लीला-हे बेटा जगतकुमार ! तुम ज़रा मेरे समीप आओ।

जगतकु०-(हाथ जोड़कर) जो आज्ञा श्रीमतीकी।

(आता है)

लीला-(समीप बैठा,प्रेमसे) बेटा जगत् कुमार ! अब तुम आसुरी सम्पत्तिको

छोड़, दैवीसम्पत्तिवाले हुए हो। अब इन गुणोंको न त्यागना।

जगत्कु०-श्रीमती! यह सत्गुरु विचार-देवके उपदेशरूप अक्षर हृदयमें से जाने वाले नहीं हैं। जैसे लाखमें अग्निके सम्बन्ध से पिघलनेपर मुहरके अक्षर गढ़ते हैं वह फिर नहीं जाते और जबतक लाख पिघलती नहीं तबतक अक्षर नहीं गढ़ते। इसी प्रकार हम लोगों का हृदय लाख के समान कठोर है। जब कोई संकट आकर पड़ता है तब वैराग्य से हृदय पिघलता है। उस समय आप लोगों के प्रताप से किसी महानुभावों के उपदेशरूप अक्षर ऐसे लगते हैं कि अपने फलरूप मोक्षपद पर अटल कर जाते हैं। श्रीमती ! यह रंग अब उतरने का नहीं।

(इस प्रकार श्रवण करके अमीरी फ़क़ीरी के उपकार को स्मरण करती हुई, प्रेम में विह्वल हो, फ़क़ीरी में लय होगई। फ़क़ीरी मन में लय होगई और धन धर्म

में लय होगया । धर्म धैर्यसमेत मन में लय हुआ। और संसार (जगत्कुमार) विचार में लय हुआ। और विचार आरामदारीसहित मन में लय हुआ। मन शुद्ध सत्त्वभावको प्राप्त हुआ २ विज्ञानदेव में लय हुआ। सत्संग इस लीला को देख प्रेम में मग्न हो विज्ञानदेव के चरणों में इसप्रकार लगा कि विज्ञानमय होगया। और लीला भी अपनी लीला को समेट विज्ञान देव में लय होगई। विज्ञान शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप निर्विकल्प चैतन्य मन है)।

---

* अष्टमाङ्क *

प्रथम गर्भाङ्क ।

स्थान रंगभूमि
(नटी नट का प्रवेश)

नटी-महाराज ! नाटक समाप्त हुआ, अब क्या कर्त्तव्य है ?

सूत्रधार-प्रसन्न होकर, प्यारी ! मैं आपका धन्यवाद करता हूं। आपने बड़ा अद्भुत वेदान्त का अत्युत्तम नाटक किया। आज तक ऐसा नाटक किसी नाट्यशाला में नहीं हुआ "लीला-विज्ञान-विनोद नाटक" उप-

देशरूप परमरमणीय है । देखिये कैसी अनोखी रचना की है इसकी कि-शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप निष्क्रिय निर्विकल्प चैतन्यरूप विज्ञानघन है। उसकी अनादि शक्ति माया अभिन्नरूपता से विज्ञान के आश्रित है। जैसे अग्निकी दाहशक्ति अग्नि में अनिर्वचनीयरूप से स्थित है अर्थात् है भी और नहीं भी। यदि कहा जाय कि अग्नि में दाहशक्ति है सो सर्व-गत सामान्य अग्नि काष्ठादिकों को दाह क्यों नहीं करती। और जो कहाजाय कि नहीं है तो अग्नि के स्पर्श से दाह न होना चाहिये सो होता है । इसकारण अग्निमें दाहशक्ति अनिर्वचनीय है इसी प्रकार ब्रह्म में माया अनिर्वचनीय है। यदि कहाजावे कि है तो ब्रह्म शुद्धस्वरूप नि-र्विकार चैतन्यघन है उसमें माया को अवसर कहां?और जो कहाजाय कि नहीं है तो उसका कार्य संसार प्रत्यक्ष प्रतीत

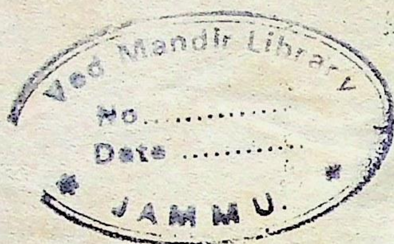
होरहा है । इस से अनिर्वचनीय है । जिस पूर्णब्रह्ममें माया नहीं सो मन वाणीसे परे है । और जिस किसी किंचित् अंशमें माया आरोपितरूप है सो वही लीलाके निमित्त लीलादेवीरूपसे प्रकट हुई और ब्रह्म विज्ञानरूप है । उन दोनोंसे दो वंश चले-एक दैवीरूप दूसरा, आसुरीरूप; लीलादेवी लीलाके निमित्त विज्ञानदेवसे सत्ता लेनेको क्षुब्धचित्त होनेके कारण प्रथम आसुरीय वंशको उत्पन्न करती भयी। फिर उस विज्ञानघनके सम्बन्धसे परमपावन हुई २ दैवीवंशको उत्पन्न करती भयी । प्रथम आसुरीय वंशकी बल्ली अमीरी (प्रवृत्ति) को उत्पन्न किया । पश्चात् दैवीवंशकी बल्लीफ़क़ीरी (निवृत्ति) को उत्पन्न किया।

प्रवृत्तिने धनदेवके सम्बन्धसे संसार पुत्रको उत्पन्न किया । और वह संसार कुसंगके प्रभावसे कुनारी ख्वारी नारीके साथ सम्बन्धकर निर्वंश हुआ । और

फ़क़ीरी देवीने मनदेवके साथ सम्बन्धकर बिचार पुत्रको उत्पन्न किया। सो विचार सत्संगके प्रभावसे सुंदर नारी आरामदे के साथ सम्बन्धकर अपने वंशको अट करता भया कि-जिस विचारदेवका प्रभाव वर्तमान है और सदैव रहेगा और से आसुरीवंश अपने प्रकृति गुणके प्रभावसे अत्यंत दुःखित होकर देवीवंशका आश्रय ले, सत्संगके प्रभावसे आसुरीभावको त्याग, देवीवंशमें लय होगया। सो देवीवंश अपना प्रभाव धर्मात्माओंमें बीजारोपण कर लीलामात्र विज्ञानमें लय होगया। और लीलाभी अपनी लीलाको समेट, विज्ञानघनमें लय होगई। विज्ञानघन स्वयं सिद्ध निराधार है।

हे दर्शकवृन्द! देखिये, कैसा गहर गंभीर आशय इस नाटकमें । धन्य है श्रीमद्विद्यादिवाकर महानुभावको कि-जिसने अपनी कारुण्यदृष्टिसे प्राकृ

Say Rs 12 Lacs


Ved Mandir Library
No.
Date
JAMMU.

